श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

पर्व के उपलक्ष्य में

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग प्रवचन

अवतार किसको कहते हैं ? भगवान अवतार क्यों धारण करते हैं ? श्रीकृष्ण अवतार-रहस्य... 'जन्म कर्म च मे दिव्यं..., श्रीकृष्ण की समता..., श्रीकृष्ण की गुरुसेवा... श्रीकृष्ण के सहज जीवन का रहस्य...

प्रातःस्मरणीय परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

निवेदन....

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी आपका आत्मिक सुख जगाने का, आध्यात्मिक बल जगाने का पर्व है। जीव को श्रीकृष्ण-तत्त्व में सराबोर करने का त्यौहार है। तुम्हारा सुषुप्त प्रेम जगाने की दिव्य रात्रि है।

श्रीकृष्ण का जीवन सर्वांगसंपूर्ण जीवन है। उनकी हर लीला कुछ नयी प्रेरणा देने वाली है। उनकी जीवन-लीलाओं का वास्तविक रहस्य तो श्रीकृष्ण तत्त्व का आत्मरूप से अनुभव किये हुए महापुरूष ही हमें समझा सकते हैं।

ब्रह्मनिष्ठ महापुरूष पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में किये गये सत्संग प्रवचनों को पुस्तक के रूप में आपके करकमलों में पहुँचाने का समिति को सौभाग्य मिल रहा है। सेवा के इस सौभाग्य से प्रसन्नता हुई।

आप श्रीकृष्ण के जीवन को अपना आदर्श बनाकर, उसके अनुसार आचरण करके उस पथ के पथिक बन सकें, यही हार्दिक शुभकामना....

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
अमदावाद आश्रम।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

श्री कृष्ण अवतार-रहस्य

(श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के पावन पर्व पर सूरत (गुज.) के आश्रम में साधना शिविर में मध्यान्ह संध्या के समय आश्रम का विराट पंडाल सूरत की धर्मपरायण जनता और देश-विदेश से आये हुए भक्तों से खचा-खच भरा हुआ है। दांडीराम उत्सव किये गये। श्रीकृष्ण की बंसी बजायी गयी। मटकी फोड़ कार्यक्रम की तैयारियाँ पूर्ण हो गयी। सब आतुर आँखों से परम पूज्य बापू का इन्तजार कर रहे हैं। ठीक पौने बारह बजे पूज्य बापू पधारे और उल्लास, उत्साह और आनंद की तरंगे पूरे पंडाल में छा गईं। पूज्यश्री ने अपनी मनोहारिणी, प्रेम छलकाती, मंगलवाणी में श्रीकृष्ण-तत्त्व का अवतार-रहस्य प्रकट किया.....)

जन्माष्टमी तुम्हारा आत्मिक सुख जगाने का, तुम्हारा आध्यात्मिक बल जगाने का पर्व है। जीव को श्रीकृष्ण-तत्त्व में सराबोर करने का त्यौहार है। तुम्हारा सुषुप्त प्रेम जगाने की दिव्य रात्रि है।

हे श्रीकृष्ण ! शायद आप सच्चे व्यक्तियों की कीर्ति, शौर्य और हिम्मत बढ़ान व मार्गदर्शन करने के लिए अवतरित हुए हैं। कुछ लोगों का मानना है कि जैसे, मलयाचल में चंदन के वृक्ष अपनी सुगंध फैलाते हैं, वैसे ही सोलह कला-संपन्न अवतार से आप यदुवंश की शोभा और आभा बढ़ाने के लिए अवतरित हुए हैं। कुछ लोग यूँ ही कहते हैं कि वसुदेव और देवकी की तपस्या से प्रसन्न होकर देवद्रोही दानवों के जुल्म दूर करने, भक्तों की भावना को तृप्त करने के लिए वसुदेव जी के यहाँ ईश्वर निर्गुण निराकार, सगुण साकार होकर अवतरित हुए। लीला और लटकों के भूखे ग्वाल-गोपियों को प्रसन्न करके आनंद का दान करने के लिए आप अवतरित हुए हैं। कुछ लोग यूँ भी कहते हैं कि पृथ्वी जब पापियों के भार से डूबी जा रही थी जैसे, नाव सामर्थ्य से अधिक वजन लेकर चलने से डूब जाती है, ऐसे ही पृथ्वी ने पापियों के पाप प्रभाव से दुःखी हो ब्रह्माजी की शरण ली और ब्रह्माजी ने आप की शरण ली। तब हे अनादि ! अच्युत ! हे अनंत कलाओं के भंडार ! सोलह कलाओं सहित आप पृथ्वी पर प्रकट हुए। पृथ्वी का भार उतारने के लिए,

शिशुपाल, कंस, शकुनि, दुर्योधन जैसे दुर्जनों की समाजशोषक वृत्तियों को ठीक करने के लिए, उनको अपने कर्मों का फल चखाने के लिए और भक्तों की सच्चाई और स्नेह का फल देने के लिए हे अच्युत ! हे अनादि ! आप साकार अवतार लेकर प्रकट हुए। कुंता जी कहती हैं-

"हे भगवान ! संसार के कुचक्र में बारम्बार जन्म, मृत्यु और वासना के वेग में बह जाने वाले जीवों को निर्वासनिक तत्त्व का प्रसाद दिलाने के लिए लीला-माधुर्य, रूप-माधुर्य और उपदेश-माधुर्य से जीव का अपना निज स्वरूप जो कि परम मधुर है, सुख स्वरूप है उस सुख स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए, आत्म-प्रसाद देने के लिए और कामनाओं के कुचक्र से संसार समुद्र में बह जाने वाले जीवों को तारने के लिए आपका अवतार हुआ है।"

अवतार किसको कहते हैं ?

'अवतरति इति अवतारः।'

जो ऊपर से नीचे आये उसे अवतार कहते हैं। जिसे कोई अपेक्षा नहीं और हजारों अपेक्षावाला दिखे, जिसे कोई कर्तव्य नहीं फिर भी भागा-भागा जाये। जीव भागे-भागे जा रहे हैं कर्म के बंधन से और ईश्वर जब भागा-भागा जाये तो कर्म का बन्धन नहीं, ईश्वर की करूणा है। जीव कर्मों के बन्धन से, माया के वशीभूत होकर संसार में आता है, उसको जन्म कहते हैं। ईश्वर कर्मबन्धन से नहीं, माया के वश नहीं अपितु माया को वश करता हुआ संसार में जीवों की नाईं ही आता है, जीता है, मक्खन माँगता है, उसे भूख भी लगती है, वस्त्र भी चाहिए और घोड़ा भी चाहिए। माँ यशोदा का प्यार भी चाहिए और समाज के रीति रिवाज के अनुसार चलना भी चाहिए। ये सब 'चाहिए..... चाहिए' अपने सिर पर लादकर तो चलता है, हालाँकि उस पर कोई बंधन नहीं। फिर भी चलता है, स्वीकार कर लेता है नट की नाईं ! नट भीतर से तो सब जानता है फिर भी नाट्य नियमों के अनुसार भिखारी भी बन जाता है, राजा भी बन जाता है और प्रजा के साथ भी देखा जाता है। परंतु अंदर अपने नटत्व भाव में ज्यों का त्यों जगा रहता है। ऐसे ही जिन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान, स्वरूप का बोध ज्यों का त्यों है फिर भी साधारण जीवों के बीच, उन की उन्नति, जागृति करने के लिए जो अवतार हैं वे अवतार कृष्णावतार, रामावतार रूप से जाने जाते हैं।

तपती दुपहरी में जो अवतार हुआ, अशांत जीवों में शांति और मर्यादा की स्थापना करने के लिए जो अवतार हुआ उसे 'रामावतार' कहते हैं। समाज में जब शोषक लोग बढ़ गये, दीन-दुखियों को सताने वाले व चाणूर और मुष्टिक जैसे पहलवानों और दुर्जनों का पोषण करने वाले क्रूर राजा बढ़ गये, समाज त्राहिमाम पुकार उठा, सर्वत्र भय व आशंका का घोर अंधकार छा गया तब भाद्रपद मास (गुजरात-महाराष्ट्र में श्रावण मास) में कृष्ण पक्ष की उस अंधकारमयी अष्टमी को कृष्णावतार हुआ। जिस दिन वह निर्गुण, निराकार, अच्युत, माया को वश करने वाले जीवमात्र के परम सुहृद प्रकट हुए वह आज का पावन दिन जन्माष्टमी कहलाता है। उसकी आप सब को बधाई हो....

आवेश अवतार, प्रवेश अवतार, प्रेरक अवतार, अंतर्यामी अवतार, साक्षी अवतार..... ऐसे अनेक स्थानों पर अनेक बार भगवान के अवतार हुए हैं। एक अवतार अर्चना अवतार भी होता है। मूर्ति में भगवान की भावना करते हैं, पूजा की जाती है, वहाँ भगवान अपनी चेतना का अवतार प्रकट कर सकते हैं। श्रीनाथजी की मूर्ति के आगे वल्लभाचार्य दूध धरते हैं और वल्लभाचार्य के हाथ से भगवान दूध लेकर पीते हैं। नरो नामक आहीर की लड़की से भगवान ने अपने हाथों से दूध का प्याला ले लिया था।

धन्ना जाट के आगे भगवान पत्थर की मूर्ति में से प्रकट हुए। यह आविर्भाव अवतार था। भगवान कभी भी, किसी भी व्यक्ति के आगे, किसी भी अन्तःकरण में, किसी भी मूर्ति में, किसी भी जगह पर अपने भक्तों को मार्गदर्शन देकर उन्हें नित्यतत्त्व में ले जाने के लिए सर्वसमर्थ हैं। उनकी लीला अनादि है। जो अनंत, अनादि हैं वे सान्त व साकार होकर आते हैं और अलौकिक लीलाएँ करते हैं।

अवतार जैसे-तैसे, जहाँ तहाँ प्रकट नहीं हो जाया करते। उनके पीछे बहुत कुछ परिश्रम व संकल्प होते हैं। असंख्य लोगों के अस्पष्ट और अनिर्णित पुरूषार्थ को सही दिशा देने के लिए जो महापुरूष या ईश्वरीय चेतना प्रकट होती है उसे हम अवतार कहकर पूजते हैं। जितना ज्यादा स्पष्ट पुरूषार्थ उतना ही महान अवतार प्रकट होता है।

रामजी को प्रकट करने वाले दशरथ और कौशल्या ही नहीं अपितु और भी कई पुण्यात्माओं के संकल्प थे। बंदर और हनुमानजी आदि की माँग थी। भक्तों को स्पष्ट जीवन का मार्गदर्शन सुझाने की जब अत्यंत जरूरत पड़ी तब 'रामावतार' हुआ। अवतार होने से पहले बहुत व्यवस्था होती है। अथाह पुरूषार्थ, अटल श्रद्धा, सतत प्रयास होत हैं और अपने पुरूषार्थ के बल पर नहीं, 'निर्बल के बल राम' ऐसा जब साधक के, समाज के चित्त में आ जाता है तब परमात्मा अपनी करूणामयी वृत्ति से, भावना से और स्वभाव से अवतरित होकर भक्तों को मार्गदर्शन देते हैं। समाज को उन्नत करने में अंगुलीनिर्देश करते है। श्रीकृष्ण के गोवर्धन पर्वत उठाने के विषय में विद्वानों का मानना है कि जुल्मी राजाओं का जुल्म और समाज-शोषकों की अति भोग-लोलुपता इतनी बढ़ गयी, समाज का शोषण इतना बढ़ गया कि श्रीकृष्ण को अंगुलीनिर्देश करना पड़ा कि इन्द्र की पूजा कब तक करोगे ? अहंकारी और शोषण करने वाले, जो तुम से तुम्हारा धन-धान्य लिये जा रहे है, तुम्हारे जीवन के उत्कर्ष का ख्याल नहीं करते, तुम्हें जीवनदाता से मिलाने का पुरूषार्थ नहीं करते ऐसे कंस आदि लोगों से कब तक डरते रहोगे ? अपने में साहस भरो और क्रांति लाओ। क्रांति के बाद शांति आयेगी। बिना क्रांति के शांति नहीं।

जर्मनी में युद्ध हुआ, फिर जर्मनी में हिम्मत आयी। जापानी भी युद्ध में नष्ट-भ्रष्ट हो गये, फिर उनमें नवजीवन की चेतना जागी और साहस आया। युद्ध और संघर्ष भी कभी-कभी सुषुप्त चेतना को जगाने का काम करते हैं। आलस्य और प्रमाद से तो युद्ध अच्छा है।

युद्ध करना तो रजोगुण है। ऐसे ही पड़े रहना तमोगुण है। तमोगुण से रजोगुण में आयें और रजोगुण के बाद सत्त्वगुण में पहुँचें और सत्त्वगुणी आदमी गुणातीत हो जाये। प्रकृति में युद्ध की व्यवस्था भी है, प्रेम की व्यवस्था भी है और साहस की व्यवस्था भी है। आपका सर्वांगीण विकास हो इसलिए काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा दुर्बलताओं से युद्ध करो। अपने चैतन्य आत्मा को परमात्मा से एकाकार कर दो।

यह कौन सा उकदा जो हो नहीं सकता।
तेरा जी न चाहे तो हो नहीं सकता
छोटा सा कीड़ा पत्थर में घर करे।
इन्सान क्या अपने दिले-दिलबर में घर न करे ?

भागवत में, गीता में, शास्त्रों में सच्चाई से भक्ति करने वाले भक्तों का, योगसाधना करके योगसिद्धि पाने वाले योगियों का और आत्मविचार करके आत्मसिद्धि को पाये हुए ब्रह्मवेत्ताओं का वर्णन तो मिलता है किंतु कलियुगी भगवानों की बात न गीता में, न भागवत में और न किन्हीं पवित्र शास्त्रों में ही है।

भभूत, कुमकुम, अंगूठी आदि वस्तुएँ निकालने वाले यक्षिणी-सिद्ध, भूतप्रेत-सिद्ध या टूणा-फूणा की सिद्धिवाले हो सकते हैं। आत्म-साक्षात्कार करके सिद्ध तत्त्व का, स्वतः सिद्ध स्वरूप का अमृतपान कराने वाले रामतीर्थ, रमण महर्षि, नानक और कबीर जैसे संत, वशिष्ठ जी और सांदिपनी जैसे महापुरूष हैं जिनका भगवान राम और श्रीकृष्ण भी शिष्यत्व स्वीकार करते हैं। अर्थात् जो भगवान के भी गुरू हैं ऐसे ब्रह्मवेत्ता आत्म-सिद्धि को पाते हैं। उनकी नजरों में यक्षिणी, भूत या प्रेत की सिद्धि, हाथ में से कड़ा या कुंडल निकालने की सिद्धि नगण्य होती है। ऐसी सिद्धियोंवाले सिद्धों का गीता, भागवत या अन्य ग्रन्थों में भगवान रूप में कोई वर्णन नहीं मिलता और न ही उच्च कोटि के सिद्धों में ही उनकी गणना होती है।

स्वयंभू बने हुए भगवानों की आज से 20 साल पहले तो कुंभ में भी भीड़ लगी थी। हाँ, उन महापुरूषों में कुछ मानसिक शक्ति या फिर भूतप्रेत की सिद्धि हो सकती है। मगर भभूत, कुमकुम या कड़ा कुंडल ही जीवन क लक्ष्य नहीं है। आत्मशांति, परमात्म-साक्षात्कार ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने युद्ध के मैदान में अर्जुन को वही आत्म-साक्षात्कार की विद्या दी थी। श्रीराम ने हनुमान जी को वही विद्या दी थी। भभूत, भूत-प्रेत या यक्षिणी-सिद्धिवालों की अपेक्षा तो हनुमानजी और अर्जुन के पास ज्यादा योग्यताएँ थीं। ऐसे पुरूषों को भी आत्मज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। तो हे भोले मानव ! तू इन कलियुगी भगवानों के प्रभाव में आकर अपने मुक्तिफल का, आत्मज्ञान का और आत्म-साक्षात्कार का अनादर न कर बैठना। किसी के प्रति द्वेष रखना तो अच्छा नहीं परंतु किसी छोटे-मोटे चमत्कारों में आकर परमात्मज्ञान का रास्ता व आत्मज्ञान पाने की, सुषुप्त जीवन-शक्तियाँ जगाने की आध्यात्मिक दिशा को भूलना नहीं।

श्रीकृष्ण, श्रीराम, भगवान वेदव्यास और वशिष्ठजी महाराज ने, तुलसीदास जैसे संतों ने, रामकृष्ण और रमण महर्षि जैसे आत्मसिद्धों ने जो दिशा दी है वही साधक के लिए, समाज के लिए और देश के लिए हितकर है।

जीवन में सच्ची दिशा होनी चाहिए। हम किसलिए आये हैं इसका सतत चिंतन करना चाहिए। आज के आदमी के पास कुछ स्पष्ट ध्येय नहीं है।

"पढ़ते क्यों हो ?"

"पास होने के लिये।"

"पास क्यों होना चाहते हो ?"

"नौकरी करने के लिये।"

"नौकरी क्यों करना चाहते हो ?"

"पैसे कमाने के लिये।""

"पैसे क्यों कमाना चाहते हो ?"

"खाने-पीने के लिये।"

"खाना-पीना क्यों चाहते हो ?"

"जीने के लिये।"

"और जीना क्यों चाहते हो ?"

"मरने के लिये।"

मरने के लिय इतनी मजदूरी की कोई आवश्यकता ही नहीं है। हकीकत में यह सब गहराई में सुखी होने के लिये, आनंदित होने के लिये करते हैं। अतः परमानंद को हो पाने का ध्येय होना चाहि।

कृष्ण उस पद में स्थित थे। द्वारिका डूब रही थी, कोई फिकर नहीं। छछीयनभरी छाछ के लिए नाच रहे हैं तो नाच रहे हैं, कोई परवाह नहीं। कुछ मिला तो वही मस्ती। सब छूट जाता है तो भी वही मस्ती.....

पूरे हैं वे मर्द जो हर हाल में खुश हैं।
मिला अगर माल तो उस माल में खुश हैं।।
हो गये बेहाल तो उस हाल में खुश हैं।।

श्रीकृष्ण को नंगे पैर भागना पड़ा तो धोती के टुकड़े बाँधकर भागे जा रहे हैं। छः महीने गिरनार की गिरी-गुफाओं में साधुओं के घर प्रसाद पाकर जीना पड़ता है तो जी रहे हैं। कोई फरियाद नहीं। द्वारिकाधीश होकर सोने के महलों में रहे तो भी कोई फर्क नहीं। अपने देखते-देखते सर्वस्व डूब रहा है तब भी भीतर में वही समता। श्रीकृष्ण समझते हैं कि यह सब माया है और हम इसे सत्य समझते हैं। बारिश के दिनों में जैसे बादलों में देवताओं की बारात - सी दिखती है, वह बादलों की माया है। ऐसे संसार में जो बारात दिखती है, वह विश्वंभर की माया है। श्रीकृष्ण

तुम्हें यह बताना चाहते हैं कि माया को माया समझो और चैतन्य स्वरूप को 'मैं' रूप में जान लो तो माया को भी मजा है और अपने आपको भी मजा ही मजा है।

'अवतार' कोई हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने से नहीं हो जाता। केवल आँसू बहाने से भी नहीं होता। फरियाद करने से भी नहीं होता। गिड़गिड़ाने से भी नहीं होता।

अपने जीवन रूपी गोकुल में पहले ग्वाल-गोपियाँ आते हैं और फिर कृष्ण आते हैं। राम जी आये, वह बंदरों और हनुमानजी आदि की माँग थी। ऐसे तुम्हारे हृदय में छिपे हुए राम या कृष्ण प्रकट हो उसके पहले तुम्हारे इस देहरूपी गोकुल को सँवारने के लिए ग्वाल-बाल आ जायें अर्थात् सत्कर्म और साधना आ जाये तो फिर कन्हैया और राधा अवश्य आयेंगे। राधा दस महीने पहले आती है, फिर श्रीकृष्ण आते हैं। 'राधा' - 'धारा' यानी पहले भक्ति की वृत्ति आती है, ब्रह्माकार वृत्ति आती है, बाद में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इसलिए कहते हैं- "राधा-कृष्ण, सीता-राम।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जन्माष्टमी पर पूज्यश्री का तात्त्विक प्रवचन

'वासुं करोति इति वासुः।' जो सब में बस रहा हो, वास कर रह हो उस सच्चिदानंद परमात्मा का नाम है 'वासुदेव'।

आज भगवान वासुदेव का प्राकट्य महोत्सव है। भगवान वासुदेव अट्ठासवीं चतुर्युगी के द्वापर युग में प्रकट हुए हैं। वे अजन्मा हैं, अच्युत हैं, अकाल हैं, काल की सीमा में नहीं आते। वे काल के भी काल हैं। अखूट ऐश्वर्य, अनुपम माधुर्य और असीम प्रेम से परिपूर्ण हैं भगवान वासुदेव। जो अवतार रहित हैं उनका अवतार किया जा रहा है, जो जन्म रहित हैं उनका जन्म मनाया जा रहा है। जो काल से परे हैं, उन्हें काल की सीमा में लाकर उत्सव मनाया जा रहा है। जो सबमें बस रहे हैं, सब जिनमें बस रहे हैं उनका जन्मोत्सव मनाया जा रहा है। 'अकालमूरत' को समय में लाया जा रहा है।

जो आदमी जैसा होता है उसकी दृष्टि और चेष्टा भी वैसी ही होती है। मनुष्य काल के प्रभाव में है और जन्मता-मरता है। इसलिए उस अकाल का, अजन्मा का जन्म-महोत्सव मनाता है।

जब-जब समाज अति व्यवहारी, बाह्य स्वार्थ से आक्रांत होता है, तब-तब निष्कामता, प्रेम, माधुर्य, सौन्दर्य का स्वाद चखाने समाज की उन्नति करने के लिए जो अवतरण होता है उसमें भगवान श्रीराम मर्यादा अवतार हैं, नृसिंह आवेश अवतार हैं। द्रोपदी की साड़ी खींची जा रही थी उस समय भगवान का प्रवेश अवतार था। परंतु कृष्णावतार प्रवेश अवतार नहीं है, आवेश अवतार भी नहीं है, मर्यादा अवतार भी नहीं है। वे तो लीलावतार हैं, पूर्णावतार हैं, माधुर्य अवतार हैं,

ऐश्वर्य अवतार हैं, प्रेमावतार हैं। भगवान का माधुर्य, ऐश्वर्य, प्रेमयुक्त वर्णन कृष्णावतार में ही पाया जाता है।

रामावतार में दास्य भक्ति की बात है परंतु कृष्णावतार में सख्य भक्ति की बात है। श्रीकृष्ण को या तो सखा दिखता है या वात्सल्य बरसाने वाली माँ दिखती है या अपने मित्र-प्रेमी, ग्वाल-गोपियाँ दिखते हैं। जो अकाल है उसे काल में लाकर, जो अजन्मा है उसे जन्म में लाकर, हम अपना जन्म सँवारकर, अजन्मा तत्त्व का साक्षात्कार करने को जा रहे हैं।

रोहिणी नक्षत्र में, भाद्रपद मास(गुजरात-महाराष्ट्र में श्रावण मास) के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कंस के जेल में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है। कृष्ण पक्ष है, अँधेरी रात है। अँधेरी रात को ही उस प्रकाश की आवश्यकता है।

वर्णन आया है कि जब भगवान अवतरित हुए तब जेल के दरवाजे खुल गये। पहरेदारों को नींद आ गयी। रोकने-टोकने और विघ्न डालने वाले सब निद्राधीन हो गये। जन्म हुआ है जेल में, एकान्त में, वसुदेव-देवकी के यहाँ और लालन-पालन होता है नंद-यशोदा के यहाँ। ब्रह्मसुख का प्राकट्य एक जगह पर होता है और उसका पोषण दूसरी जगह पर होता है। श्रीकृष्ण का प्राकट्य देवकी के यहाँ हुआ है परंतु पोषण यशोदा माँ के वहाँ होता है। अर्थात् जब श्रीकृष्ण-जन्म होता है, उस आत्मसुख का प्राकट्य होता है तब इन्द्रियाँ और मन ये सब सो जाने चाहिए, शांत हो जाने चाहिए। जब इन्द्रियाँ और मन ये सब सो जाने चाहिए, शांत हो जाने चाहिए। जब इन्द्रियाँ और मन शांत हो जाते हैं तब बंधन के दरवाजे खुल जाते है। 'मैं' और 'मेरे' की भावनाएँ खत्म हो जाती हैं। जब इन्द्रियाँ सतर्क होती हैं, मन चंचल होता है तब मैं और मेरा बनता है। जब इन्द्रियाँ शांत हो जाती हैं, मन विश्रांति पाता है, तब मैं और मेरा नहीं रहता।

भगवान का प्राकट्य हुआ है। वसुदेव भगवान को उठाकर लिये जा रहे हैं, यशोदा के घर। आनंद का प्राकट्य और आनंद के पोषण के बीच, आनंद को देखकर आनंदित होने वाली यमुना की कथा आती है। यमुना जी सोचती हैं कि वे आनंदस्वरूप अकाल पुरूष आज साकार ब्रह्म होकर आये हैं। मैं उनके चरण छूने के लिए बढ़ूँ तो सही परंतु वसुदेव जी डूब गये तो ? वसुदेव जी डूब जायेंगे तो मुझ पर कलंक लगेगा कि आनंद को उठाये लिये जाने वाले को कैसे डुबाया ? अगर ऊपर नहीं बढ़ती हूँ तो चरण-स्पर्श कैसे हो ?

यमुनाजी कभी तरंगित होती हैं तो कभी नीचे उतरती हैं। वसुदेव जी को लगता है कि अभी डूबे-अभी डूबे। परंतु यमुना जी को अपनी इज्जत का, अपने प्रेमावतार परमात्मा का भी ख्याल है। बाढ़ का पानी वसुदेव जी को डुबाने में असमर्थ है ! यह कैसा आश्चर्य है ! उसे बाढ़ का पानी कहो या यमुना जी के प्रेम की बाढ़ कहो, उसने वसुदेव जी को डुबोया नहीं, और वसुदेव के सिर पर जो आनंदकंद सच्चिदानंद है उसके चरण छुए बिना चुप भी नहीं रहती। उछलती है, फिर सँभलती है।

आनंद भी अपने जीवन में उछलता है, सँभलता है। 'मेरा तेरा' लोक-लाज डूब न जाय, इसकी भी चिंता रहती है, फिर उछलता है। जब तक साधक आनंद के चरणस्पर्श नहीं कर लेता तब तक उसकी उछलकूद चालू ही रहती है।

आनंदस्वरूप श्रीकृष्ण समझ गये कि यमुना उछलकूद मचाती है। वसुदेव को डुबाने से तो डरती है और मेरे चरण छुए बिना चुप भी नहीं रहती। तब उस नंदनंदन ने अपना पैर पसारा है, यमुना जी को आह्लाद हुआ और यमुना जी तृप्त हुई हैं।

संतों का कहना है, महापुरूषों का यह अनुभव है कि निर्विकारी समाधि में आनंद का प्राकट्य हो सकता है परंतु आनंदस्वरूप प्रभु का पोषण तो प्रेमाभक्ति के सिवाय कहीं नहीं हो सकता। योगी कहता है कि समाधि में था, बड़ा आनंद था, बड़ा सुख था, भगवन्मस्ती थी, मगर समाधि चली गयी तो अब आनंद का पोषण कैसे हो ? आनंद का पोषण बिना रस के नहीं होता।

वसुदेव-देवकी ने तो आनंद-स्वरूप श्रीकृष्ण को प्रकट किया किंतु उसका पोषण होता है नंद के घर, यशोदा के घर। वसुदेव उन्हें नंद के घर ले गये है, यशोदा सो रही है। यशोदा के पालने में कन्या का अवतरण हुआ है। **जहाँ प्रेम है, विश्रांति है वहाँ शांति का प्राकट्य होता है। जहाँ समाधि है वहाँ आनंद का प्राकट्य होता है।**

हमारे शास्त्रकारों ने, पुराणकारों ने और ब्रह्मज्ञानी महापुरूषों ने हमारे चित्त की बड़ी सँभाल की रखी है। किसी एक आकृति, मूर्ति या फोटो में कहीं रूक न जाये। भगवान की मूर्ति में देखते-देखते अमूर्त आत्मा-परमात्मा तक पहुँचे, ऐसी व्यवस्था है कदम-कदम पर हमारे धर्म में।

वसुदेव जी आनंदकंद कृष्ण कन्हैया को यशोदा के पास छोड़ते हैं और शक्ति स्वरूपा कन्या को ले आते हैं। उसे जेल में देवकी के पास रख देते हैं। कंस आता है। कंस यानी अहंकार। अहंकार देखता है कि यह तो बालक नहीं बालिका है। फिर भी इन्हीं की है, कैसे जीवित रखूँ ? कंस उस बालिका को मारता है। वह कन्या कंस के हाथों से छटक जाती है अर्थात् अहंकारी के पास शक्ति आती है तो उसके पास टिकती नहीं। उसका मनमाना काम करती नहीं। अहंकारी की शक्ति छटक जाती है।

'मैं' बना रहा, अहंकार बना रहा तो शक्ति आयेगी मगर टिकेगी नहीं। भक्ति हाथ से छिटक जायेगी। इसलिए हे साधक ! धन का अहंकार आये तो सावधान रहना। तेरे से बड़े-बड़े सत्ताधीश इस जहाँ से खाली हाथ गये। सौंदर्य का अहंकार आये तब भी सावधान रहना। अहंकार तुम्हें वसुदेव से दूर कर देगा, आत्मा-परमात्मा से दूर कर देगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

श्रीकृष्ण का सहज जीवन

कर्षति आकर्षति इति कृष्णः।

श्रीकृष्ण किसी व्यक्ति, देह अथवा आकृति के स्वरूप का नाम नहीं है। कृष्ण का आशय है जो आकर्षति कर दे। आत्मा के आनंदस्वरूप को ही श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप मानना चाहिए।

बाह्य दृष्टि से जो श्रीकृष्ण दिखाई देते हैं वे तो अपने-आप में पूर्ण हैं ही, उनकी लीलाएँ भी पूर्ण हैं। साथ ही श्रीकृष्ण-तत्त्व को जानने वाले कबीर जी जैसे संतों की लीलाएँ भी पूर्ण हैं।

वास्तव में तो तुम भी श्रीकृष्ण और कबीर जी से कम नहीं हो परंतु तुम अपने को कुछ मान बैठे हो, स्वयं को किसी ढाँचे में ढाल बैठे हो। फलतः कुंठित हो गये हो। इसलिए तुम्हारी शक्तियों का चमत्कार नहीं दिखता। अन्यथा तुममें इतनी शक्ति का खजाना है कि तुम किसी को डूबने से बचाकर किनारे लगा सकते हो, सूखे हुए कुएँ में पानी छलका सकते हो, जैसे नामदेव ने छलकाया।

तुम स्वयं को देहधारी व सीमित मानते हो। 'इतना मेरा.... इतना पराया... यह मेरी जाति..... यह मेरा नाम....' बस, यहीं से तुम्हारा दुर्भाग्य शुरू हो जाता है क्योंकि तुम अपनी गरिमा भूल जाते हो, वासना के पीछे स्वयं को भी दाँव पर लगाकर सहज जीवन से दूर हो जाते हो। किंतु ज्यों-ज्यों वासना का अंत होता है त्यों-त्यों सहजता प्रकट होती जाती है और सहजता के प्राकट्य से वासना पुनः प्रकट नहीं होती।

जीवन में त्याग... त्याग..... त्याग... या निवृत्ति.... निवृत्ति.. निवृत्ति... भी नहीं होनी चाहिए और केवल भोग भी नहीं होना चाहिए। श्रीकृष्ण का मार्ग त्याग का भी नहीं है और भोग का भी नहीं है। कबीर जी का मार्ग भी श्रीकृष्ण जैसा है - सहज समाधि का मार्ग। कबीर जी कहते हैं-

साधो ! सहज समाधि भली।
गुरूकृपा भई जा दिन से, दिन-दिन अधिक चली।
आँख न मूँदूँ कान न रूँदूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुली आँख में हँस-हँस न देखूँ, सुंदर रूप निहारूँ।
साधो, सहज समाधि भली।

अपनी जीवनदृष्टि भी ऐसी होनी चाहिए। त्याग भी नहीं, भोग भी नहीं अपितु समग्र जीवन सहज समाधि हो जाय - साधक की यह अभिलाषा होनी चाहिए। इस हेतु प्राणबल, मनोबल, भावबल और ऊँची समझ चाहिए।

प्रार्थना और पुकार से भावनाओं का विकास होता है, भावबल बढ़ता है। प्राणायाम से प्राणबल बढ़ता है, सेवा से क्रियाबल बढ़ता है और सत्संग से समझ बढ़ती है। भावबल, प्राणबल

और क्रियाबल के विकास और ऊँची समझ से सहज समाधि का अपना स्वभाव बन जाता है तथा जीवन चमक उठता है।

श्रीकृष्ण का तो पूरा जीवन मानो सहज समाधि में ही बीता। कभी पूतना में आयी तो कभी धेनकासुर व बकासुर आये। उनके साथ जूझे भी और बाल-गोपियों के साथ वे नाचे और खेले भी। अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण युद्ध के मैदान में उतरे और अक्रूर और उद्धवजी से मिलते समय पूरे प्रेम से मिले। जिस समय जो करना पड़ा कर लिया।

मैं चाहता हूँ कि भगवान आप सबके जीवन में भी यह भावना जल्दी-से-जल्दी पूरी करें ताकि आप सहज समाधि की दशा को पा सको। सहज समाधि तब होगी जब हम लोग जीवन में कभी पीछे न हटेंगे। जिस समय जो कार्य करना पड़े, कर्तृत्वबुद्धि से नहीं करेंगे अपितु खेल समझकर करेंगे। करने का बोझ नहीं लगे, ऐसा विनोद मात्र समझकर करेंगे।

यदि सुबह-सुबह आपको कहीं जाता हुआ देखकर कोई पूछे किः "कहाँ जा रहे हो ? आफिस जा रहे हो ?" तब उत्साह से भरे हुए कहेंगेः "नहीं, नहीं। सैर करने जा रहा हूँ, घूमने जा रहा हूँ।"

फिर यदि 10 बजे आपको जाता देखकर कोई पूछे कि "कहीं बाहर जा रहे हो ? सैर करने जा रहे हो ?" तब आप उदास या बोझिल स्वर में कहेंगेः "नहीं यार ! आफिस जा रहा हूँ।" अथवा "दुकान जा रहा हूँ।"

सड़क वही-की-वही है और आप भी वही हैं परंतु आपका संगीत छिन गया है, जीवन बोझिल हो गया है जो कि अनुचित है। उचित तो यह है कि प्रत्येक कार्य हम खेल समझकर करें।

ऐसा नहीं है कि श्रीकृष्ण ने कुछ नहीं किया था और संत लोग कुछ नहीं करते हैं। हकीकत में देखा जाये तो वे लोग बहुत कुछ करते हैं परंतु उनमें कर्तृत्व का बोझा नहीं होता। अतः उनके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य उत्कृष्ट व यथार्थ होता है और हम तो थोड़ा-सा भी काम करते हैं तो बोझिल हो जाते हैं, अहंकार से भर जाते हैं।

आज अहंकार से हम इतने बोझिल हो गये हैं कि हम हँसते हैं तो भी बोझिल होकर, रोते हैं तो भी बोझिल होकर, नाचते हैं तो भी बोझिल होकर। सच पूछो तो हमारा नृत्य ही खो गया है, मस्ती खो गयी है, हास्य खो गया है। इस कारण से सहज जीवन से हम दूर हो गये हैं। कोई सुधरे हुए लोग नाचते हुए दिखाई भी पड़ते हैं तो क्लबों की दासता और विकारों की गंदी व्यवस्था में अधिकाधिक विक्षिप्त होते जा रहे हैं।

मीरा जैसी मस्ती, गौरांग जैसा आत्मगौरव, श्रीकृष्ण-तत्त्व में मस्त संत कँवरराम जैसा निर्दोष निर्विकारी नृत्य अपने जीवन में लाओ। जो होगा, देखा जायेगा। आज.... अभी से ही सत्य स्वरूप ईश्वर में, आत्मा में, परमेश्वरीय स्वभाव में गोता मारकर गुनगुनाओ। 'बिन फेरे, प्रभु हम

तेरे !' अपनी सोऽहं स्वरूप की मस्ती में छोड़ दो कल की चिंता। परे फेंको प्रतिष्ठा और पदवी के अहं को। हो जाओ निर्दोष नारायण के 'कर्षति आकर्षति' स्वभाव के साथ.... सहज सुख-स्वरूप...

ॐ शांतिः ! ॐ आनन्द !! ॐ माधुर्य !!!

हमारा जीवन सहज नहीं है इसलिए जीवन में परिस्थितियों का बहुत प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत, जिन संतो का जीवन सहज है, उनके जीवन में परिस्थितियों का कभी प्रभाव नहीं पड़ता। अपितु संत जहाँ जाते हैं वहाँ की परिस्थितियों पर संतों का प्रभाव पड़ता है।

आप भी संत-भगवंत की तरह सहज जीवन जीने का सकल्प कीजिए। ऐसा नहीं कि श्रीकृष्ण की तरह तुम बँसी बजाते हुए गायों के पीछे घूमने लग जाओ। ....नहीं, मकान-दुकान संभालो, गृहस्थ जीवन जियो परंतु भीतर से तुम ऐसे रहो कि जीवन बोझा न बने, अपितु आनंदमय बन जाये। श्री अखा भगतजी ने कहा हैः

राज्य करे रमणी रमे, के ओढ़े मृगछाल।
जो करे सो सहज में, सो साहिब का लाल।।

श्रीकृष्ण के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण बात झलकती है कि बुझे दीयों को प्रकाश देने का कार्य और उलझे हुए दिलों को सुलझाने का काम तो वे करते ही हैं, साथ ही साथ इन कार्यों में आने वाले विघ्नों को, फिर चाहे वह मामा कंस हो या पूतना या शकटासुर-धेनकासुर-अघासुर-बकासुर हो फिर केशि हो, सबको श्रीकृष्ण किनारे लगा देते हैं।

साधक को चाहिए कि साधना में या ईश्वरप्राप्ति में मददरूप जो व्यवहार, खान-पान, रंग-ढंग है अथवा जो घड़ी भर के लिए थकान ही ध्यान रखते हुए वहाँ पहुँचने का तरीका पा लेना चाहिए।

आवश्यक नहीं है कि आप श्रीकृष्ण का अवतार रात्रि को 12 बजे ही मनाओ। श्रीकृष्ण का अवतार तो आप जब चाहो तब मना सकते हो। श्रीकृष्ण के अवतार से अभिप्राय है श्रीकृष्ण का आदर्श, श्रीकृष्ण का संकेत, श्रीकृष्ण की निर्लेपता, श्रीकृष्ण का रसमय स्वभाव।

हमने कृष्ण-कन्हैयालाल की जय कह दी, मक्खन-मिश्री बाँट दी, खा ली, इतने से ही अवतार का उत्सव मनाने की पूर्णाहूति नहीं होती।

श्रीकृष्ण जैसी मधुरता को और जीवन में तमाम परेशानियों के बीच रहकर भी चित्त की समता को बनाये रखने का हमारा प्रयत्न होना चाहिए। यह जन्माष्टमी अपने प्रेम को प्रकट करने का संदेश देती है। जितना अधिक हम आत्मनिष्ठा में आगे बढ़ते हैं, उतना-उतना हम श्रीकृष्ण का आदर करते हैं और श्रीकृष्ण का अवतार मानते हैं।

ऐसा नहीं कि रात्रि को जागरण किया और दूसरे दिन सोते रहे... नहीं।

हमारे नगर में, हमारे आस-पास में जो भाई बहन हैं, वे भी इसका लाभ लें। ऐसी अवस्था करनी चाहिए। जिन लोगों को विधर्मी लोग अपने धर्म से च्युत कर रहे हैं, ऐसे लोगों को पुनः गीता के ज्ञान से, श्रीकृष्ण के अमृत से सिंचन करने का हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

जन्माष्टमी पर हम संकल्प करें कि गीता के संदेश को, योग के संदेश को, आत्मज्ञान के अमृत को हम भी पीयें तथा जगत में भी इस जगदगुरू का प्रसाद बाँटें।

कृष्णं वन्दे जगद् गुरूम्।

श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव तो तब पूर्ण माना जायेगा, जब हम उनके सिद्धान्तों को समझेंगे तथा उन्हें अपने जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे। जैसे, गोकुल में कंस का राज्य नहीं हो सकता, ऐसे ही तुम्हारी इन्द्रियों के गाँव अर्थात् शरीर में भी कंस का अर्थात् अहंकार का राज्य न रहे अपितु श्रीकृष्ण की प्रभुप्रेम की बँसी बजे और आत्मानंद का उल्लास हो यही जन्माष्टमी का हेतु है।

आज के इस पावन दिन, आज के माधुर्य भरे अवसर पर जिन्होंने माधुर्य की बौछार की, जो सदा मुस्कुराते रहे, जो सब कुछ करते हुए भी निर्लेप नारायण स्वभाव में सदा जगमगाते रहे और अपने भक्तों को भी वही प्रसाद पिलाते रहे ऐसे श्रीकृष्ण को लाख-लाख वंदन... हजार-हजार बार दंडवत....करोड़-करोड़ बार धन्यवाद......।

श्रीकृष्ण का जीवन एक समग्र जीवन है। उसमें से आप जो कुछ भी पाना चाहे, पा सकते हैं। उनके जीवन की प्रत्येक घटना, प्रत्येक लीला आपको कुछ-न-कुछ संदेश अवश्य देती है। आप उसे अपनाकर, उनका अनुसरण करके अवश्य ही वहाँ तक पहुँच सकते हैं, जहाँ श्रीकृष्ण स्वयं हैं। आप श्रीकृष्ण के उपदेश को, गीता के ज्ञान को अपना आदर्श बनाकर, उसके अनुसार आचरण करके उस पथ के पथिक बन सकें, यहीं मेरी हार्दिक शुभकामना है। ॐ......ॐ.......ॐ........

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जन्म कर्म च मे दिव्यं......

जीव स्वाभाविक ही विषय-विकारों और इन्द्रियों के भोगों में भटकता है क्योंकि जीव के 84 लाख जन्मों के संस्कार हैं, उन्हीं संस्कारों को लेकर जीव मनुष्य शरीर में आता है। खाना-पीना, सोना, भयभीत होना, बच्चों को जन्म देना, दुःख आये तो घबराना, सुख आये तो हर्षित होना और आखिर में मर जाना - ये पुराने काम करते-करते जीव आया है। मनुष्य शरीर में भी यही काम करते-करते जीव आया है। मनुष्य शरीर में भी ये ही काम करते-करते वह खत्म न हो जाय इसलिए भगवान का अवतार होता है।

जब समाज का शोषण करने वाले आसुरी वृत्ति के शिकार बने हुए लोग, कंस जैसे लोग प्रजा का उत्पीड़न करके भी भोग भोगते-भोगते प्रजा को त्राहिमाम् पुकारने के लिए बाध्य कर देते हैं, समाज में अव्यवस्था फैलने लगती है, सज्जन लोग पेट भरने में भी कठिनाइयों का सामना करते हैं और दुष्ट लोग शराब-कबाब उड़ाते हैं, कंस, चाणूर, मुष्टिक जैसे दुष्ट बढ़ जाते है और

निर्दोष गोप-बाल जैसे अधिक सताये जाते हैं तब उन सताये जाने वालों की संकल्प शक्ति और भावना शक्ति उत्कट होती है और सताने वालों के दुष्कर्मों का फल देने के लिए भगवान का अवतार होता है।

पृथ्वी आक्रान्त होकर श्रीहरि से अपने त्राण के लिए प्रार्थना करती है। जो पृथ्वी इन आँखों से दिखती है वह पृथ्वी का आधिभौतिक स्वरूप है किंतु कभी-कभी पृथ्वी नारी या गाय का रूप लेकर आती है वह पृथ्वी का आधिदैविक स्वरूप है।

पृथ्वी से कहा गयाः "इतनी बड़ी-बड़ी इमारतें तुम पर बन गयी हैं इससे तुम पर कितना सारा बोझा बढ़ गया !" तब पृथ्वी ने कहाः "इन इमारतों का कोई बोझा नहीं लगता किंतु जब साधु-संतों और भगवान को भूलकर, सत्कर्मों को भूलकर, सज्जनों को तंग करने वाले विषय-विलासी लोग बढ़ जाते हैं तब मुझ पर बोझा बढ़ जाता है।"

जब-जब पृथ्वी पर इस प्रकार का बोझा बढ़ जाता है, तब तब पृथ्वी अपना बोझा उतारने के लिए भगवान की शरण में जाती है। कंस आदि दुष्टों के पापकर्म बढ़ जाने पर भी पापकर्मों के भार से बोझिल पृथ्वी देवताओं के साथ भगवान के पास गयी और उसने श्रीहरि से प्रार्थना की तब भगवान ने कहाः "हे देवताओ ! पृथ्वी के साथ तुम भी आये हो, धरती के भार को हलका करने की तुम्हारी भी इच्छा है, अतः जाओ, तुम भी वृन्दावन में जाकर गोप-ग्वालों के रूप में अवतरित हो मेरी लीला में सहयोगी बनो। मैं भी समय पाकर वसुदेव-देवकी के यहाँ अवतार लूँगा।"

वसुदेव-देवकी कोई साधारण मनुष्य नहीं थे। स्वायम्भुव मन्वंतर में वसुदे 'सुतपा' नाम के प्रजापति और देवकी उनकी पत्नी 'पृश्नि' थीं। सृष्टि के विस्तार के लिए ब्रह्माजी की आज्ञा मिलने पर उन्होंने भगवान को पाने के लिये बड़ा तप किया था।

जीव में बहुत बढ़िया शक्ति छुपी है। 'जहाँ चाह, वहाँ राह।'

मनुष्य का जैसा दृढ़ निश्चय होता है और उस निश्चय को साकार करने में तत्परता से लगा रहता है तो वैसी ही परिस्थिति उसके इर्द-गिर्द प्रकट हो जाती है। मनुष्य में इतनी शक्ति है कि वह कर्म के जगत में दृढ़ता से कर्म सारे विश्व को चकित कर सकता है। मनुष्य इतना सामर्थ्य है कि वह उपासना करके मनचाहे भगवान और देवता का रूप प्रकट कर सकता है। वह योग करके चित्त की विश्रांति और अष्ट सिद्धियाँ पा सकता है और तत्त्वज्ञान पाकर, भगवान के वास्तविक स्वरूप को पहचानकर जीवन्मुक्त भी हो सकता है।

साधारण आदमी कर्मों के बन्धन से जन्म लेता है, सुख-दुःख का भोग करता है और अंत में कर्मों के जाल में फँस मरता है परंतु भगवान बंधन से अवतरित तो हो रहे हैं किंतु कर्मबंधन से नहीं। वह बंधन है प्रेम बंधन, प्रेमी भक्तों की पुकार का बंधन। भगवान करूणा करके अवतार लेते हैं, कर्मबन्धन से नहीं। उनका जन्म दिव्य है।

जन्म कर्म च मे दिव्यं......

साधारण जीव जब जन्म लेता है तो कर्मों के परिणामस्वरूप माता के रज-वीर्य के मिश्रण से जन्मता है परंतु भगवान जब अवतार लेते है तो चतुर्भुजी रूप में दर्शन देते हैं। फिर माँ और पिता को तपस्याकाल में संतुष्ट करने के लिए जो वरदान दिया था, उस वरदान के फलस्वरूप नन्हें से हो जाते हैं।

सुतपा प्रजापति और पृश्नि ने पूर्वकाल में वरदान में भगवान जैसा पुत्र माँगा था तब भगवान ने कहा थाः "मेरे जैसा तो मैं ही हूँ। तुम जैसा पुत्र माँगते हो वैसा मैं दे नहीं सकता। अतः एक बार नही वरन् तीन बार मैं तुम्हारा पुत्र होकर आऊँगा।"

वे ही भगवान आदिनारयण सुतपा-पृश्नि के यहाँ 'पृश्निगर्भ' होकर, कश्यप-अदिति के यहाँ 'वामन' होकर और वसुदेव-देवकी के यहाँ 'भगवान श्रीकृष्ण' होकर आये। भगवान के जन्म और कर्म दोनों ही दिव्य हैं क्योंकि उनके कर्म फलाकांक्षा से रहित होते हैं। साधारण आदमी जब कर्म करता है तो फल की इच्छा से और कर्त्ता होकर कर्म करता है जबकि भगवान के कर्म न तो फलासक्ति से होते है और न ही कर्त्ताभाव से।

अकर्तृत्वं अभोक्तृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा।

अष्टावक्रजी कहते हैं कि जब जीव अपने को अकर्त्ता-अभोक्ता मानता है तब उसके मन के दोष अपने-आप दूर होने लगते हैं और उसके कर्म भी दिव्य होने लगते हैं। हकीकत में जीव का वास्तविक स्वरूप अकर्त्ता-अभोक्ता ही है। कर्त्तापना तो प्रकृति की चीजों में होता है और प्रकृति क चीजों जुड़कर जीव अहं के साथ तादात्म्य कर लेता है। शरीर, मन, बुद्धि, ये सब प्रकृति की चीजें हैं किंतु जब अविद्या के कारण जीव प्रकृति की इन चीजों में ममता कर लेता है तभी उसे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेष - इन पाँच क्लेशों में गिरना पड़ता है। भगवान के अवतार के तीन मुख्य प्रयोजन हैं-

1. **परितृणाय साधुनाः** साधु स्वभाव के लोगों का, सज्जन स्वभाववाले लोगों का रक्षण करना।
2. **विनाशाय च दुष्कृताम्** जब समाज में बहुत स्वार्थी, तामसी, आसुरी प्रकृति के कुकर्मी लोग बढ़ जाते हैं तब उनकी लगाम खींचना।
3. **धर्मसंस्थापनार्थायः** धर्म की स्थापना करने के लिए अर्थात् अपने स्वजनों को, अपने भक्तों को तथा अपनी ओर आने वालों को अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो सके इसका मार्गदर्शन करना।

भगवान के अवतार के समय तो लोग लाभान्वित होते ही हैं किंतु भगवान का दिव्य विग्रह जब अन्तर्धान हो जाता है, उसके बाद भी भगवान के गुण, कर्म और लीलाओं का स्मरण करते-करते हजारों वर्ष बीत जाने के बाद भी मानव समाज लाभ उठाता रहता है।

ऐसे भगवान के स्वभाव को जिसने एक बार भी जान लिया फिर वह भगवान को प्रेम किये बिना रह नहीं सकता। शिवजी ने कहा हैः

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना।।

'हे उमा ! जिसने भगवान के स्वभाव को जान लिया, उसे भगवान का भजन किये बिना चैन ही नहीं पड़ता है।'

जैसे दुष्ट के स्वभाव को जानने पर उसे दण्ड दिये बिना अच्छे न्यायाधीश का मन नहीं मानेगा, उसी प्रकार भगवान के स्वभाव को जान लेने पर उन्हें प्यार किये बिना भक्त का मन नहीं मानेगा। जो जिसको प्रेम करता है उसका स्वभाव उसमें अवतरित हो जाता है। अतः संत, भगवंत से प्रेम करें ताकि उनका स्वभाव हममें भी आ जाये। भगवान कहते हैं-

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्तवा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।

'हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक है-इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जानता है, वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।'

(श्रीमद् भगवद् गीताः 4.9)

श्रीरामचरित मानस में भी आता हैः

विप3 धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।।

'ब्राह्मण, गौ, देवता और संतों के लिए भगवान ने मनुष्य का अवतार लिया है। वे अज्ञानमयी माया और उसके गुण तथा इन्द्रियों से परे हैं। उनका दिव्य शरीर अपनी इच्छा से ही बना है (किसी कर्मबन्धन से परवश होकर त्रिगुणात्मक भौतिक पदार्थों के द्वारा नहीं।)'

जीव तो कर्म के बंधन से जन्म लेता है जबकि भगवान अपनी इच्छा से आते हैं। जैसे, कई उद्योगपति सेठ अपनी इच्छा से अपनी फैक्टरी में सैर करने जाये, मजदूर को काम बताने के लिए खुद भी थोड़ी देर काम करने लग जाय तो इससे सेठ का सेठपना चला नहीं जाता। ऐसे ही जीवों को मुक्ति का मार्ग बताने के लिए भगवान इस जगत में आ जायें तो भगवान का भगवानपना चला नहीं जाता।

भगवान श्रीकृष्ण ने आगे की 7 तिथियाँ और पीछे की 7 तिथियाँ छोड़कर बीच की अष्टमी तिथि को पसंद किया, वह भी भाद्रपद मास (गुजरात-महाराष्ट्र के अनुसार श्रावण मास) के रोहिणी नक्षत्र में, कृष्ण पक्ष की अष्टमी। शोषकों ने समाज में अंधेरा मचा रखा था और समाज के लोग भी उस अंधकार से भयभीत थे, अविद्या में उलझे हुए थे। अतः जैसे, कीचड़ में गिरे व्यक्ति को निकालने के लिए निकालने वाले को स्वयं भी कीचड़ में जाना पड़ता है, वैसे ही अंधकार में उलझे लोगों को प्रकाश में लाने के लिए भगवान ने भी अंधकार में अवतार ले लिया।

भगवान के जन्म और कर्म तो दिव्य हैं ही परंतु उनकी प्रेम शक्ति, माधुर्य शक्ति तथा आह्लादिनी शक्ति भी दिव्य है। जिसने एक बार भी भगवान के माधुर्य का अनुभव किया या सुना

वह भगवान का ही हो जाता है। तभी तो किसी मुसलमान कवि ने गाया कि 'उस नंदनंदन यशोदानंदन की गली में मत जाना। वहाँ तो दिल ही लूट लिया जाता है....'

समस्य ऐश्वर्यों के स्वामी श्रीकृष्ण यशोदा द्वारा बाँधने पर ओखली से बँध भी जाते हैं। यह उनकी माधुर्य शक्ति है। जो जीवों का बंधन छुड़ाने आये हैं वे माधुर्य शक्ति को स्वीकार करके स्वयं बँध जाते हैं। जो लोगों को पाशविक वृत्तियों से छुड़ाने आये हैं, वे ग्वाल बालों के साथ खेलते-खेलते हार भी जाते हैं और पशु की नाई घोड़ा बनकर उनको अपने कंधे पर भी बैठा लेते हैं। कैसे होंगे वे नटखट नागर !

कृष्ण कन्हैया लाल की जय.....

भगवान के कर्म और लीलाएँ दुःख निवृत्त करने वाली तथा सुख प्रदान करने वाली हैं। भगवान की लीलाएँ कर्त्तापन मिटाने वाली हैं। भगवान का ज्ञान अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश को मिटाने वाला है। ऐसे भगवान का जन्मोत्सव हम हर साल मनाते हैं। वास्तव में अजन्मा का तो कोई जन्म नहीं, परन्तु हम जन्म-मरण के चक्र में चक्कर काटने वालों के लिए ही वह अजन्मा प्रभु जन्म को स्वीकार करके हमें भी प्रेम के द्वारा, ज्ञान के द्वारा, आह्लादिनी शक्ति के द्वारा अजन्मा तत्त्व में जगाते हैं।

जैसे, कोई सेठ फैक्टरी बनाये और उसे लावारिस छोड़ दे, उसे कभी देखने ही न जाय तो वह सेठ कैसा ? वह सेठ फैक्टरी को देखने आये, कहीं गड़बड़ हो तो उसे ठीक करे तभी तो वह उस फैक्टरी का स्वामी हो सकता है। ऐसे ही भगवान दुनिया बनाकर छोड़ दें और कभी दुनिया में आयें ही नहीं, सातवें आसमान में ही रहें तो वे भगवान कैसे ? बनायी हुई सृष्टि में वे बार-बार आते हैं और सृष्टि की गड़बड़ियाँ ठीक करते हैं फिर भी ठीक-ठाक करने का उन्हें अहं नहीं होता है।

उस आत्मा के साथ, कृष्ण तत्त्व के साथ आपका सनातन संबंध है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। (गीता 15.7)

इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है।

सृष्टि नहीं थी तब भी आप हम थे, शरीर नहीं था तब भी आप-हम थे, शरीर है तब भी आपका-हमारा चैतन्यस्वरूप है और शरीर नहीं रहेगा तब भी आप हम रहेंगे।

ऐसे ही सृष्टि के आदि अंत मध्य तीनों में भगवान रहते हैं। सृष्टि का प्रलय हो जाय फिर भी भगवान रहते हैं। ऐसे भगवान को अपना आत्मा मानकर जो प्रेम करता है, ऐसे भगवान को अपने तारणहार मानकर जो उनकी आज्ञा का पालन करता है और ऐसे भगवान के गुण, कर्म और लीलाओं का जो चिंतन करता है, उसके तन, मन पवित्र हो जाते हैं और बुद्धि समता के साम्राज्य में प्रवेश पा लेती है।

भगवान कहते हैं- "जो मेरे जन्म और कर्म को तत्त्व से जानता है वह मुक्त हो जाता है।"

भगवान के कर्म और जन्म को जो तत्त्व से जान लेता है, उस मनुष्य के कर्म भी दिव्य होने लगते हैं। वास्तव में कर्म का कर्त्ता जीव है। कर्म अनित्य है और कर्म का फल भी अनित्य है परंतु कर्म का कर्त्ता जीव नित्य है। जीव भी नित्य है और जीव का चैतन्य आत्मा, ईश्वर भी नित्य है। अपने ऐसे नित्य स्वभाव का सतत् स्मरण करो।

जो शरीर व वस्तुओं को अनित्य समझता है, वह अधिक लोभ, अहंकार और शोषण नहीं करेगा। वह स्वयं तो खुश रहेगा, औरों को भी सुख-शांति के रास्ते में ले जायेगा। जिसके अंतःकरण में भगवान के दिव्य कर्म और दिव्य जन्म का ज्ञान है, उसके कर्मों में दिव्यता आ जाती है। कुछ लोग आलसी, प्रमादी होकर कर्मों को छोड़ देते हैं, उनका विनाश हो जाता है। कुछ लोग कर्मों का फल ऐहिक वस्तुएँ चाहते हैं, उनके कर्म भी उनको बाँधने वाले हो जाते हैं किंतु जो कर्म का फल दिव्य चाहता है, वह अपने कर्मों को सत्संग व सत्कर्म द्वारा दिव्य बना लेता है और परम दिव्य परमात्मा के आनंद को पाने में भी सफल हो जाता है। फिर उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

हम भी अपने जन्म और कर्म को दिव्य बना लें। श्रीकृष्ण के माधुर्य को, श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य को, श्रीकृष्ण के आनंद को मनुष्य जाति अधिक-से-अधिक समझे, अधिक-से-अधिक पा ले तो कितना अच्छा !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

श्रीकृष्ण की गुरूसेवा

गुरू की महिमा अमाप है, अपार है। भगवान स्वयं भी लोक कल्याणार्थ जब मानवरूप में अवतरित होते हैं तो गुरूद्वार पर जाते हैं।

राम कृष्ण से कौन बड़ा, तिन्ह ने भी गुरू कीन्ह।
तीन लोक के हैं धनी, गुरू आगे आधीन।।

द्वापर युग में जब भगवान श्रीकृष्ण अवतरित हुए और कंस का विनाश हो चुका, तब श्रीकृष्ण शास्त्रोक्त विधि से हाथ में समिधा लेकर और इन्द्रियों को वश में रखकर गुरूवर सांदीपनी के आश्रम में गये। वहाँ वे भक्तिपूर्वक गुरू की सेवा करने लगे। गुरू आश्रम में सेवा करते हुए, गुरू सांदीपनी से भगवान श्रीकृष्ण ने वेद-वेदांग, उपनिषद, मीमांसादि षड्दर्शन, अस्त्र-शस्त्रविद्या, धर्मशास्त्र और राजनीति आदि की शिक्षा प्राप्त की। प्रखर बुद्धि के कारण उन्होंने गुरू के एक बार कहने मात्र से ही सब सीख लिया। विष्णुपुराण के मत से 64 दिन में ही श्रीकृष्ण ने सभी 64 कलाएँ सीख लीं।

जब अध्ययन पूर्ण हुआ, तब श्रीकृष्ण ने गुरू से दक्षिणा के लिए प्रार्थना की।

"गुरूदेव ! आज्ञा कीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?"

गुरूः "कोई आवश्यकता नहीं है।"

श्रीकृष्णः "आपको तो कुछ नहीं चाहिए, किंतु हमें दिये बिना चैन नहीं पड़ेगा। कुछ तो आज्ञा करें !"

गुरूः "अच्छा....जाओ, अपनी माता से पूछ लो।"

श्रीकृष्ण गुरूपत्नी के पास गये और बोलेः "माँ ! कोई सेवा हो तो बताइये।"

गुरूपत्नी जानती थीं कि श्रीकृष्ण कोई साधारण मानव नहीं बल्कि स्वयं भगवान हैं, अतः वे बोलीः "मेरा पुत्र प्रभास क्षेत्र में मर गया है। उसे लाकर दे दो ताकि मैं उसे पयः पान करा सकूँ।"

श्रीकृष्णः "जो आज्ञा।"

श्रीकृष्ण रथ पर सवार होकर प्रभास क्षेत्र पहुँचे और वहाँ समुद्र तट पर कुछ देर ठहरे। समुद्र ने उन्हें परमेश्वर जानकर उनकी यथायोग्य पूजा की। श्रीकृष्ण बोलेः "तुमने अपनी बड़ी बड़ी लहरों से हमारे गुरूपुत्र को हर लिया था। अब उसे शीघ्र लौटा दो।"

समुद्रः "मैंने बालक को नहीं हरा है, मेरे भीतर पंचजन नामक एक बड़ा दैत्य शंखरूप से रहता है, निसंदेह उसी ने आपके गुरूपुत्र का हरण किया है।"

श्रीकृष्ण ने तत्काल जल के भीतर घुसकर उस दैत्य को मार डाला, पर उसके पेट में गुरूपुत्र नहीं मिला। तब उसके शरीर का पांचजन्य शंख लेकर श्रीकृष्ण जल से बाहर आये और यमराज की संयमनी पुरी में गये। वहाँ भगवान ने उस शंख को बजाया। कहते हैं कि उस ध्वनि को सुनकर नारकीय जीवों के पाप नष्ट हो जाने से वे सब वैकुंठ पहुँच गये। यमराज ने बड़ी भक्ति के साथ श्रीकृष्ण की पूजा की और प्रार्थना करते हुए कहाः "हे लीलापुरूषोत्तम ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?"

श्रीकृष्णः "तुम तो नहीं, पर तुम्हारे दूत कर्मबंधन के अनुसार हमारे गुरूपुत्र को यहाँ ले आये हैं। उसे मेरी आज्ञा से वापस दे दो।"

'जो आज्ञा' कहकर यमराज उस बालक को ले आये।

श्रीकृष्ण ने गुरूपुत्र को, जैसा वह मरा था वैसा ही उसका शरीर बनाकर, समुद्र से लाये हुए रत्नादि के साथ गुरूचरणों में अर्पित करके कहाः

"गुरूदेव ! और जो कुछ भी आप चाहें, आज्ञा करें।"

गुरूदेवः "वत्स ! तुमने गुरूदक्षिणा भली प्रकार से संपन्न कर दी। तुम्हारे जैसे शिष्य से गुरू की कौन-सी कामना अवशेष रह सकती है ? वीर ! अब तुम अपने घर जाओ। तुम्हारी कीर्ति श्रोताओं को पवित्र करे और तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या नित्य उपस्थित और नित्य नवीन बनी रहकर इस लोक तथा परलोक में तुम्हारे अभीष्ट फल को देने में समर्थ हों।"

गुरूसेवा का कैसा सुंदर आदर्श प्रस्तुत किया है श्रीकृष्ण ने ! थे तो भगवान, फिर भी गुरू की सेवा उन्होंने स्वयं की है।

सत्शिष्यों को पता होता है कि गुरू की एक छोटी सी सेवा करने से सकामता निष्कामता में बदलने लगती है, खिन्न हृदय आनंदित हो उठता है, सूखा हृदय भक्तिरस से सराबोर हो उठता है। गुरूसेवा में क्या आनंद आता है, यह तो किसी सत्शिष्य से ही पूछकर देखें।

गुरू की सेवा साधु जाने, गुरूसेवा कहाँ मूढ़ पिछानै।
गुरूसेवा सबहुन पर भारी, समझ करो सोई नरनारी।।
गुरूसेवा सों विघ्न विनाशे, दुर्मति भाजै पातक नाशै।
गुरूसेवा चौरासी छूटै, आवागमन का डोरा टूटै।।
गुरूसेवा यम दंड न लागै, ममता मरै भक्ति में जागे।
गुरूसेवा सूं प्रेम प्रकाशे, उनमत होय मिटै जग आशै।।
गुरूसेवा परमातम दरशै, त्रैगुण तजि चौथा पद परशै।
श्री शुकदेव बतायो भेदा, चरनदास कर गुरू की सेवा।।
हरि सेवा कृत सौ बरस, गुरू सेवा पल चार।
तो भी नहीं बराबरी, बेदन कियो विचार।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रेम के पुजारीः श्रीकृष्ण

प्रेम में ऐसा जादू होता है कि रूखे-सूखे भोजन को भी व्यञ्जनों से ज्यादा स्वादिष्ट बना देता है। श्रीकृष्ण के आगमन पर दुर्योधन ने 56 भोग बनवा रखे थे और कई कीमती हीरे-मोती और जवाहरातों की माला भेंट में देकर श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में लेने की योजना बना रखी थी। श्रीकृष्ण से दुर्योधन ने कहाः "चलिये, भोजन करने।"

श्रीकृष्णः "मैं भोजन दो जगह पर ही करता हूँ। जहाँ प्रेम होता है वहाँ करता हूँ या बहुत भूख लगती है, प्राण संकट में होते हैं तो माँगकर भी खा लेता हूँ। अभी मुझे बहुत भूख नहीं है, प्राण संकट में भी नहीं हैं और प्रेमी का घर भी नहीं है। तुम तो खुशामदखोरी करके खिलाते हो, इसलिए तुम्हारे भोजन की मुझे जरूरत नहीं है।"

दुर्योधनः "पकड़ लो इस श्रीकृष्ण को।"

अगर प्रेम होता तो कैद करवाता क्या ? श्रीकृष्ण चतुर्भुजी होकर ऊपर खड़े हो गये, दुर्योधन देखता ही रह गया !

बाद में श्रीकृष्ण विदुरजी के घर गये। विदुर जी घर पर नहीं थे, उनकी धर्मपत्नी थी। श्रीकृष्ण ने कहाः "चाची ! भूख लगी है।"

चाची भी चाची थी। केले लायी और भावविभोर होकर श्रीकृष्ण को गूदा खिलाने के बजाये छिलके खिलाती जाती और छिलके फेंकने के बजाय गूदा फेंकती जाती। श्रीकृष्ण भी प्रेम से छिलके खाते गये।

इतने में विदुर जी आये और देखा कि 'अरे ! यह तो बावरी हो गयी है ! ये त्रिभुवनपति श्रीकृष्ण भी छिलके खाये जा रहे हैं !"

वे बोलेः "ये क्या कर रहे हैं, नाथ ! क्षमा करें... गलती हो गयी। लाइये मैं खिलाऊँ।"

श्रीकृष्णः "अब बस, भोजन हो गया चाचा ! मैं तो प्रेम का भूखा हूँ।"

पत्रं पुष्पं फल तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

"जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।"

(श्रीमद् भगवद् गीताः 4.26)

प्रेम से श्रीकृष्ण को जो भी अर्पण करते हैं, सब स्वीकार कर लेते हैं। किसी ने ठीक ही गाया हैः

भगवान भक्त के वश में होते आये....
दुर्योधन के मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाये।
भगवान भक्त के वश में होते आये....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

श्रीकृष्ण की समता

महाभारत के युद्ध के बाद भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवों को लेकर गांधारी से मिलने गये।

गांधारी में श्रीकृष्ण के प्रति इतना कोप था, पुत्रशोक था, तप-तेज था कि उसकी आँखों पर पट्टी बँधी होने के बावजूद जब उसने उस पट्टी में से ही युधिष्ठिर की तरफ जरा सा कोप से देखा तो उनके पैर के नख काले हो गये। परंतु गाँधारी का क्रोध श्रीकृष्ण पर था। वह अपना कोप, तप तेज श्रीकृष्ण पर बरसाना चाहती थी। गाँधारी ने श्रीकृष्ण को खूब खरी-खोटी सुनाते हुए कहाः

"कृष्ण ! तुम समर्थ थे युद्ध टालने में। तुम चाहते तो दोनों को अच्छी तरह से दबाव में लाकर, समझाकर, अपना सैन्य न देकर, कुछ भी करके युद्ध टाल सकते थे। तुमने अपने हाथों ही मेरे कुल की तबाही की। कौरव वंश का नाश तुमने ही किया। कृष्ण ! तुमको कोई कुछ कहने वाला नहीं है। आज तक मैंने पतिपरायणा होकर जो तप किया है, आँखों में पट्टी बाँधकर, पतिपरायणा होकर जो दुर्लभ तप साधा है उस तप का उपयोग मैं तुम पर ही करूँगी। कृष्ण ! मैं तुमको शाप दूँगी।

श्रीकृष्ण तभी भी अपने दृष्टा, साक्षी, शुद्ध स्वभाव में थे। गाँधारी शाप देने को उद्यत हुई है। उसका शाप अमिट है - ऐसा श्रीकृष्ण जानते थे। फिर भी श्रीकृष्ण का चित्त क्षुभित नहीं हुआ क्योंकि श्रीकृष्ण अपने शुद्ध-बुद्ध स्वभाव को, निर्द्वन्द्व आत्मा को ज्यों-का-त्यों जानते थे। शाप मिलेगा तो शरीर को मिलेगा, शरीर के पुत्र-परिवार को मिलेगा, द्वारिका में उथल-पुथल मचेगी, मुझ कृष्णस्वरूप का क्या बिगड़ेगा ? टूटेगा तो मकान टूटेगा, झोंपड़ा टूटेगा, आकाश का क्या बिगड़ेगा ? बनेगा-बिगड़ेगा तो आकृति में होगा, निराकार का क्या बनेगा और क्या बिगड़ेगा ?

श्रीकृष्ण अपनी समता में ज्यों के त्यों बने रहे।

गाँधारी ने कोपायमान होते हुए कहाः "कृष्ण ! आज से ठीक 36वें वर्ष में तुम्हारे यदुवंशियों का आपस में लड़ाई-झगड़ा होगा। जैसे, मेरे कुल में भाईयों को आपस में लड़ा कर तुमने उनका नाश कर दिया, ऐसे ही तुम्हारे यदुवंशी भाई आपस में लड़ेंगे और यदुवंश का नाश होगा। .....और भी सुन लो.... तुम्हारी मृत्यु भी बीहड़ जंगल में अकेले होगी। मेरे कौरवों को मारने वाले कृष्ण ! यह होकर ही रहेगा।"

श्रीकृष्ण क्या कहते हैं प्रत्युत्तर में ? श्रीकृष्ण कहते हैं- "गाँधारी ! यदुवंशियों को मारने में मनुष्य सक्षम नहीं हैं। यक्ष, गंधर्व, किन्नर और देवता भी उनका नाश नहीं कर सकेंगे। इसलिए वे आपस में ही एक दूसरे को मारकर अपनी यात्रा पूरी करेंगे। यह तो जो होनी थी, वही तुमने कही। रही मेरे शरीर की बात, तो मेरे इस मायावी शरीर की मृत्यु कैसे भी हो उसमें मेरा क्या जाता है ! तुम्हारा शाप तो लगेगा यदुवंश की आकृतियों को तथा मेरे शरीर की आकृति को। परंतु गाँधारी ! तुम धैर्य धारण करो। तुम अपने आप में परमेश्वर का चिंतन करके शांति पाओ। दुःखी और परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। यह माया का खेल तो होता ही रहता है। एक बार तप करे, फिर तप नाश हो.... फिर जन्म लेकर तप करे, फिर तप नाश हो अथवा तप का फल सुख भोगे, फिर तप नाश हो.... इस नश्वर संसार में नश्वर पदार्थ आते जाते रहते हैं किंतु इस नश्वर को जो नश्वर देखता है, वह शाश्वत शांति को पा लेता है। तुम उसी शांति को पा लो। अपने परमात्मा को पा लो। जब तक जीव अपने परमात्म-स्वभाव को नहीं जानता, तब तक दुःख और सुख की मिश्रित खिचड़ी खाता रहता है - सुख भोगकर गिरता है, दुःख भोगकर उठता है। ऐसे ही जीव 84 लाख जन्मों में भटकता रहता है।

गाँधारी तुमने मुझे जो शाप दिया है, उससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। ऐसा ही हो। परंतु मेरी एक बात सुन लो - तुम दुःखी मत रहो।"

पूरे यदुवंश के नाश का शाप दिया है गाँधारी ने, फिर भी श्रीकृष्ण कह रहे हैं- 'तुम दुःखी मत हो !' कैसी सुन्दर समता है श्रीकृष्ण की। जहाँ दुःख की दाल नहीं गलती, जहाँ दुःख की पहुँच नहीं, उस दुःखहारी श्रीपरब्रह्म परमात्मा में..... जो दृष्टा, साक्षी, सर्वेश्वर, आत्मा हो बैठा है - उसके ज्ञान, उसकी प्रीति तथा उसकी स्मृति में ही सार है।

अतः श्रीकृष्ण की समता को शत-शत प्रणाम है... काश ! तुम में भी यह दिव्य ज्ञान पाने की जिज्ञासा उभर आये। नश्वर को तो कई बार पाया-खोया, एक बार शाश्वत को पाने की जिज्ञासा जाग जाय। तुम तो धन्य हो जाओगे, तुम्हारी दृष्टि जिस पर पड़ेगी वे भी पुण्यात्मा-धर्मात्मा होने लगेंगे। ऐसे परमेश्वरीय ज्ञान में स्थित रहने वाले परमेश्वर-स्वरूप हो जाते हैं। उस परमेश्वर स्वरूप को फिर-फिर से प्रणाम !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रेमावतारः श्री कृष्ण

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- "हे गोपियो ! जाओ, अपने पतियों की सेवा करो। इधर क्या रखा है ?"

गोपीः "तुम्हारा चिंतन करते-करते हम कृष्ण बन जायेंगे और तुम हमारा चिंतन करते करते हो तो तुम गोपी बन जाओगे। फिर तुम्हें पता चलेगा कि विरह क्या होता है। फिर तुम आओगे तो हम भी उपदेश देंगे कि 'जाओ, बच्चों को पालो-पोषो। सास-ससुर की सेवा करो। तुम्हारा यह कर्त्तव्य है... वह कर्तव्य है... हमारे दिन आयेंगे।'

श्रीकृष्णः "तुम्हारे दिन आयें चाहे न आयें, किंतु अभी तो जाओ !"

गोपीः "तुम यह लौकिक धर्म का उपदेश दे रहे हो परंतु लौकिक ने तो अलौकिक सुख का अमृतपान करा दिया है, हृदय का सुख दे दिया है।"

श्रीकृष्णः "अभी तो मुझे चित्तचोर कह रही थी और अभी बोलती हो कि हृदय का सुख दे दिया है। बोलने का कुछ ठिकाना भी है ?"

गोपीः "ठिकाने सारे माया में हैं। तुम तो मायापति हो जो हमें भी बेठिकाने कर दिया। इसलिए बोल दिया तो माफ करना, केशव ! बुरा मत मानना। हम क्षमा चाहती हैं किंतु तुमने तो हमारा दिल ही चुरा लिया है।"

इन्हीं गोपियों को जब उद्धव परमात्मज्ञान की बातें समझाने जाते हैं तो वे कहती हैं- "उद्धव ! तुम्हारा उपदेश हमने सुन लिया परंतु हमसे ये सब नहीं होगा, क्योंकि दिल एक ही था उसे भी वह नटखट ले गया।"

उद्धवः "वापस ले आयें ?"

गोपीः "नहीं ! उन्हीं के पास रहने दो।"

यह मोहब्बत की बातें है उद्धव, बंदगी अपने बस की नही है।
यहाँ सिर देकर होते हैं सौदे, आशिकी इतनी सस्ती नहीं है।।
प्रेमवालों ने कब किससे पूछा ? किसको पूजूँ बता मेरे उद्धव।
यहाँ दम-दम पर होते हैं सिजदे, सिर घुमाने की फुरसत नहीं है।।

कौन क्या कहता है, कौन क्या करता है, यह देखने की फुरसत नहीं है। कैसा है गोपियों का दिव्य प्रेम !

उद्धव ने पूछाः "पगलियो ! जब तुम श्रीकृष्ण के बिना नहीं रह सकती हो, बिलख रही हो और तुम्हारे प्राणनाथ मथुरा में बैठे हैं तो तुम मर क्यों नहीं जाती हो ? अभी तक जीवित कैसे हो ?"

गोपियाँ- "उद्धवजी ! यदि हम श्रीकृष्ण की याद में मर जाएँगे तो लोग लाँछन लगायेंगे कि 'कृष्ण की याद में बेचारी गोपियाँ मर गयीं।' हमारे प्रेमास्पद की इज्जत हमारी इज्जत है, इसीलिए हमारा शरीर अभी तक टिका है।"

उद्धवः "तुम्हारी ऐसी स्थिति देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है ! मैं अभी जाकर श्रीकृष्ण को प्रार्थना करके समझा-बुझाकर भेजता हूँ।"

गोपियाँ- "ऐसा मत करना। वे अगर वहाँ सुखी हैं तो उनकी खुशी में हमारी खुशी है।"

प्रेमास्पद को दुःखी करके प्रेमी कभी सुखी नहीं होना चाहता। बाहर से प्रेमी और प्रेमास्पद दिखते दो हैं किंतु भीतर से एक हो जाते हैं। प्रेम ईमानदारी सिखाता है जबकि स्वार्थ बेईमानी सिखाता है। प्रेम सहजता और सरलता सिखाता है जबकि स्वार्थ कपट और कुटिलता सिखाता है।

आज का मनुष्य बाहर से सुखी व चतुर, पर भीतर से अशांत व बेईमान बन गया है। वह ईमानदारी से न रो सकता है न हँस सकता है, न नाच सकता है, न कह सकता है और न ही ईमानदारी से सुन सकता है।

श्रीकृष्ण प्रेमस्वरूप हैं। आप उन्हीं से प्रार्थना करना कि 'हे भगवान ! हमें आज जन्माष्टमी के दिन निर्दोषता सिखा दो। हँसना आये तो हम भरपेट हँस लें, रोना आये तो हम रो लें, तेरे लिए नाचने का मन हो तो हम नाच लें, गीत गाना आये तो हम गा लें.... किंतु हे ईश्वर ! हम 'हम' न बचें, बस। हमारी जो सामाजिक मान्यताएँ हैं, धारणाएँ हैं, वे न बचें। हे विश्वेश्वर ! हे गोवर्धनधारी ! हे गोपाल ! हे नंदनंदन ! हे भक्तवत्सल ! हे गिरधारी ! हे मुरलीधर ! हे गोविन्द ! हे कन्हैया ! बस, तू इतनी कृपा करना कि हम 'हम' न बचें, तू ही तू रह जाये। कृष्ण

कन्हैया.... बंसी बजैया... वृंदावन की कुंजगलिन में.... साधक के दिल की गलियों में...ठुमक ठुमक रास रचैया....।'

वह अभी भी, इस समय यहाँ भी है। वह आपकी भक्ति, आपके प्रेम, आपकी विवशता को भी देख रहा है। वह अन्तर्यामीरूप से सदा आपके साथ है। शर्त यही है आप भीतर डूबते जाओ.... आप जितना भीतर डूबोगे, उससे प्रेम करोगे, निर्दोष बनोगे, उसकी पुकार करोगे उतने ही बाहर के लोगों की नजर में आप पागल दिखोगे, किन्तु भीतर आप सचमुच में 'गल' को पा रहे होंगे।

गोपियों ने भीतरी 'गल' को पा लिया था। उद्धवजी आये थे ब्रज में गोपियों को समझाने के लिए, किंतु श्रीकृष्ण में उनकी तन्मयता देखकर वे स्वयं ही प्रेम और आनंद से भर गये और कह उठेः

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य।।
क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः।।

'इस धरती पर केवल इन गोपियों का ही शरीर धारण करना सार्थक है, क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव में स्थित हो गयी हैं। प्रेम की यह ऊँची-से-ऊँची स्थिति संसार से भय-भीत मुमुक्षुजनों के लिए ही नहीं अपितु बड़े-बड़े मुनियों, मुक्त पुरूषों तथा हम भक्तजनों के लिए भी अभी वांछनीय ही हैं। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान श्रीकृष्ण की लीला-कथा के रस का चसका लग गया है, उन्हें कुलीनता की, द्विजातिसमुचित संस्कार की और बड़े-बड़े यज्ञ-यागों में दीक्षित होने की क्या आवश्यकता है ? अथवा, यदि भगवान की कथा का रस नहीं मिला, उसमें रूचि नहीं हुई तो अनेक महाकल्पों तक बार-बार ब्रह्म होने से भी क्या लाभ ?

कहाँ तो ये वनचरी, आचार ज्ञान जाति से हीन गाँव की गँवार ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानंदघन भगवान श्रीकृष्ण में उनका यह अनन्य परम प्रेम ! अहो, धन्य है ! धन्य है ! इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई भगवान के स्वरूप और रहस्य को न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे तो वे स्वयं अपनी शक्ति से, अपनी कृपा से उसका परम कल्याण कर देते हैं। ठीक वैसे ही जैसे, कोई अनजाने में भी अमृत पी ले तो वह अमृत अपनी गुणशक्ति से ही पीने वाले को अमर बना देता है।'

(श्रीमद् भगवद् गीताः 10.47.58.59)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रेमावतार का लीला-रहस्य

चित्त की विश्रांति के सामर्थ्य से प्रकट होता है। सामर्थ्य क्या है ? बिना व्यक्ति, बिना वस्तु के भी सुखी रहना - ये बड़ा सामर्थ्य है। अपना हृदय वस्तुओं के बिना, व्यक्तियों क बिना परम सुख का अनुभव करे - यह स्वतंत्र सुख माधुर्य बढ़ाने वाला है।

श्रीकृष्ण के जीवन में सामर्थ्य है, माधुर्य है, प्रेम है। जितना सामर्थ्य उतना ही अधिक माधुर्य, उतना ही अधिक शुद्ध प्रेम है श्रीकृष्ण के पास।

पैसों से प्रेम करोगे तो लोभी बनायेगा, पद से प्रेम करोगे तो अहंकारी बनायेगा, परिवार से प्रेम करोगे तो मोही बनायेगा। परंतु प्राणिमात्र के प्रति समभाववाला प्रेम रहेगा, शुद्ध प्रेम रहेगा तो वह परमात्मा का दीदार करवा देगा।

प्रेम सब कर सकते हैं। शांत सब रह सकते हैं और माधुर्य सब पा सकते हैं। जितना शांत रहने का अभ्यास होगा उतना ही माधुर्य विकसित होता, जितना माधुर्य विकसित है उतना ही शुद्ध प्रेम विकसित होता है और ऐसे प्रेमी भक्त को किसी चीज की कमी नहीं रहती। प्रेमी सबका हो जाता है, सब प्रेमी के हो जाते है। पशु भी प्रेम से वश हो जाते हैं, मनुष्य भी प्रेम के वश में हो जाते हैं और भगवान भी प्रेम से वश हो जाते हैं !

श्रीकृष्ण जेल में जन्मे हैं। वे आनंदकंद सच्चिदानंद जेल में प्रकटे हैं। आनंद जेल में प्रकट तो हो सकता है परंतु आनंद का विस्तार जेल नहीं हो सकता। जब तक यशोदा के घर नहीं जाता तो आनंद प्रेममय नहीं हो पाता। योगी समाधि कहते हैं - एकांत में, जेल जैसी जगह में। आनंद प्रकट तो होता है किंतु समाधि टूटी तो आनंद गया। आनंद प्रेम से बढ़ता है, माधुर्य से विकसित होता है।

प्रेम किसी का अहित नहीं करता। जो स्तनों में जहर लगाकर आयी उस पूतना को भी श्रीकृष्ण ने स्वधाम पहुँचा दिया। पूतना कौन थी ? पूतना कोई साधारण नहीं थी। पूर्वकाल में राजा बलि की बेटी थी, राजकन्या थी। भगवान वामन आये तो उनका रूप सौन्दर्य देखकर उस राजकन्या को हुआ कि 'मेरी सगाई हो गयी है। मुझे ऐसा बेटा हो तो मैं गले लगाऊँ और उसको दूध पिलाऊँ।' परंतु जब नन्हा मुन्ना वामन विराट हो गया और बलिराजा का सर्वस्व छीन लिया तो उसने सोचा किः "मैं इसको दूध पिलाऊँ ? इसको तो जहर पिलाऊँ, जहर !'

वही राजकन्या पूतना हुई। दूध भी पिलाया और जहर भी। उसे भी भगवान ने अपने स्वधाम भेज दिया। प्रेमास्पद जो ठहरे....!

प्रेम कभी फरियाद नहीं करता, उलाहना देता है। गोपियाँ उलाहना देती हैं यशोदा कोः "यशोदा ! हम तुम्हारा गाँव छोड़कर जा रही हैं।"

यशोदाः "तुम्हारा कन्हैया हमारी मटकी फोड़ देता है।"

"एक के बदले दस-दस मटकियाँ ले लो"

"ऊँ हूँ... तुम्हारा ही लाला है क्या ! हमारा नहीं है क्या ? मटकी फोड़ी तो क्या हुआ ?"

"अभी तो फरियाद कर रही थी, गाँव छोड़ने की बात कर रही थी ?"

"वह तो ऐसे ही कर दी। तुम्हारा लाला कहाँ है ? दिखा दो तो जरा।"

उलाहना देने के बहाने भी दीदार करने आई हैं, गोपियाँ ! प्रेम में परेशानी नहीं, झंझट नहीं केवल त्याग होता है, सेवा होती है। प्रेम की दुनिया ही निराली है।

प्रेम न खेतों उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा चहौं प्रजा चहौं शीश दिये ले जाय।।

प्रेम खेत में पैदा नहीं होता, बाजार में भी नहीं मिलता। जो प्रेम चाहे वह अपना शीश, अपना अभिमान दे दे ईश्वर के चरणों में, गुरूचरणों में....

एक बार यशोदा मैया मटकी फोड़ने वाले लाला के पीछे पड़ी कि 'कभी प्रभावती, कभी कोई, कभी कोई.... रोज-रोज तेरी फरियाद सुनकर मैं तो थक गयी। तू खड़ा रह।'

यशोदा ने उठायी लकड़ी। यशोदा के हाथ में लकड़ी देखकर श्रीकृष्ण भागे। श्रीकृष्ण आगे, यशोदा पीछे.... श्री कृष्ण ऐसी चाल से चलते कि माँ को तकलीफ भी न हो और माँ वापस भी न जाये ! थोड़ा दौड़ते, थोड़ा रूकते। ऐसा करते-करते देखा कि 'अब माँ थक गयी है और माँ हार जाय तो उसको आनंद नहीं आयेगा।' प्रेमदाता श्रीकृष्ण ने अपने को पकड़वा दिया। पकड़वा लिया तो माँ रस्सी लायी बाँधने के लिए। रस्सी है माया, मायातीत श्रीकृष्ण को कैसे बाँधे ? हर बार रस्सी छोटी पड़ जाय। थोड़ी देर बाद देखा कि माँ कहीं निराश न हो जाये तो प्रेम के वशीभूत मायातीत भी बँध गये। माँ बाँधकर चली गयी और इधर ओखली को घसीटते-घसीटते ये तो पहुँचे यमलार्जुन (नल-कूबर) का उद्धार करने... नल कूबर को शाप से मुक्ति दिलाने... धड़ाक-धूम वृक्ष गिरे, नल-कूबर प्रणाम करके चले गये.... अपने को बँधवाया भी तो किसी पर करूणा हेतु, अन्यथा उस मायातीत को कौन बाँधे ?

एक बार किसी गोपी ने कहाः "देख तू ऐसा मत कर। माँ ने ओखली से बाँधा तो रस्सी छोटी पड़ गयी किंतु मेरी रस्सी देख। चार-चार गायें बँध सकें इतनी बड़ी रस्सी है। तुझे तो ऐसा बाँधूँगी कि तू भी याद रखेगा, हाँ।"

कृष्णः "अच्छा बाँध।"

वह गोपी कोमल-कोमल हाथों में रस्सी बाँधनी है, यह सोचकर धीरे धीरे बाँधने लगी।

कृष्णः "तुझे रस्सी बाँधना आता ही नहीं है।"

गोपीः "मेरे बाप ! रस्सी कैसे बाँधी जाती है ?"

कृष्णः "ला, मैं तुझे बताता हूँ।" ऐसा करके गोपी के दोनों हाथ पीछे करके रस्सी से बाँधकर फिर खँभे से बाँध दिया और दूर जाकर बोलेः

"ले-ले, बाँधने वाली खुद बँध गयी। तू मुझे बाँधने आयी थी किंतु तू ही बँध गयी।

ऐसे ही माया जीव को बाँधने आये, उसकी जगह जीव ही माया को बाँध दे। मैं यही सिखाने आया हूँ।"

कैसा रहा होगा वह नटखटिया ! कैसा रहा होगा उसका दिव्य प्रेम ! अपनी एक-एक लीला से जीव की उन्नति का संदेश देता है वह प्रेमस्वरूप परमात्मा !

आनंद प्रकट तो हो जाता है जेल में परंतु बढ़ाता है यशोदा के यहाँ, प्रेम से।

यशोदा विश्रांति करती है तो शक्ति आती है, ऐसे ही चित्त की विश्रांति सामर्थ्य को जन्म देती है। परंतु शक्ति जब कंस के यहाँ जाती है तो हाथ में से छटक जाती है, ऐसे ही सामर्थ्य अहंकारी के पास आता है तो छटक जाता है। जैसे, शक्ति अहंकार रहित के पास टिकती है ऐसे ही प्रेम भी निरभिमानी के पास ही टिकता है।

प्रेम में कोई चाह नहीं होती। एक बार देवताओं के राजा इंद्र प्रसन्न हो गये और श्री कृष्ण से बोलेः "कुछ माँग लो।"

श्रीकृष्णः "अगर आप देना ही चाहते हैं तो यही दीजिए की मेरा अर्जुन के प्रति प्रेम बढ़ता रहे।"

अर्जुन अहोभाव से भर गया कि 'मेरे लिये स्वामी ने क्या माँगा है !'

प्रेम में अपनत्व होता है, निःस्वार्थता होती है, विश्वास होता है, विनम्रता होती है और त्याग होता है। सच पूछो तो प्रेम ही परमात्मा है और ऐसे परम प्रेमस्वरूप, परम प्रेमास्पद श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव ही जन्माष्टमी है।

आप सबके जीवन में भी उस परम प्रेमास्पद के लिए दिव्य प्रेम निरंतर बढ़ता रहे। आप उसी में खोये रहें, उसी के होते रहें। ॐ माधुर्य... ॐ शांति.... मधुमय माधुर्यदाता, प्रेमावतार, नित्य नवीन रस, नवीन सूझबूझ देने वाले। गीता प्रेमावतार का हृदय है - **गीता मे हृदयं पार्थ।**

प्रेमावतार श्रीकृष्ण के हृदय को समझने के लिए गीता ही तो है। आप हम प्रतिदिन गीता के ज्ञान में, परमेश्वरीय प्रेम में खोते जायें। 'उस' मय होते जायें...।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भक्त रसखान

सैयद इब्राहीम नामक एक मुसलमान व्यक्ति ने धंधा आदि किया। उसमें उसका मन नहीं लगा। आखिर वह एक सुंदरी के चक्कर में आ गया। कभी तो सुंदरी उससे मुहब्बत करती तो कभी उसका अपमान कर देती।

एक बार सुंदरी द्वारा अपमानित किये जाने पर इब्राहीम के दिल को बड़ी चोट लगी। भगवान कब, किस ढंग से, किसको अपने रंग में रँग दें, कहना मुश्किल है ! उसका कोई पुण्योदय हुआ....

वहाँ से अपमानित होकर इब्राहीम चला तो कहीं पर उसे फारसी भाषा में 'श्रीमद् भागवत' पढ़ने का अवसर मिल गया। भगवान श्रीकृष्ण की लीलाएँ पढते-पढ़ते उसने विचार किया कि मोहब्बत करें तो श्रीकृष्ण से करें। किसी ओर से क्या करें ?'

इब्राहीम गोकुल-वृंदावन गया, गोवर्धन पर्वत की प्रदक्षिणा की, संत-महात्माओं के दर्शन किये। फिर वृन्दावन में भी श्री वल्लभाचार्य के पुत्र अरूणी के उत्तराधिकारी गोस्वामी विट्ठलनाथ की शरण गया और उनसे प्रार्थना की कि 'महाराज ! मैंने पैसे कमाकर देख लिये, वाहवाही करा कर देख लिया किंतु कुछ न मिला... जिस शरीर को भोग और यश मिला वह तो अंत में दफना दिया जाएगा। अब आप कृपा करके मुझे कन्हैया की भक्ति का दान दीजिये।'

गोस्वामी का हृदय इब्राहीम की प्रार्थना से प्रसन्न हो उठा और उन्होंने उसे मंत्र दे दिया। सैयद इब्राहीम श्रीकृष्ण की पूजा करता, उनकी छवि को निहारते-निहारते प्रेमपूर्वक गुरूमंत्र का जप करता।

धीरे-धीरे वे कृष्णप्रेम-रस में रँगते गये, उनको अंतरात्मा का रस आने लगा और उनका नाम पड़ गया - 'रसखान'।

उन्होंने श्रीकृष्ण-प्रेम के अनेकों पद और कविताएँ लिखीं जो भारतीय साहित्य में आज भी देखने को मिलती हैं। 'गुरूग्रंथ साहिब' में बाबा फरीद के वचन दर्ज किये गये हैं और हिन्दी साहित्य में सैयद इब्राहीम-रसखान, रैयाना तैयब, जलालुद्दीन रोमी आदि के वचन मिलते हैं। कितनी विशाल हृदय है भारतीय संस्कृति !

रसखान लिखते हैं-

तेरी माननी तो हियो, हेरी मोहिनी मान।
प्रेमदेव की छवि लखी, भये मिया रसखान।।

एक हाड़-मांस की पुतली में सुख खोजने की बेवकूफी मिटी, वहाँ से मुख मोड़ा और लाखों सुंदरियों-सुंदरों से भी प्यारे, यहाँ तक कि कामदेव से भी प्यारे कृष्ण को देखकर मियाँ से रसखान हो गया। हे रसीले कृष्ण ! मैं तेरा दीवाना हो गया.....

रसखान लिखते हैं-

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं।।
नारद से सुक व्यास रहैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरी छाछ पै नाच नचावैं।।

भगवान शेष, गणेश, महेश, सूर्य, इन्द्र आदि जिन सच्चिदानंद परमात्मा कृष्ण का गुणगान करते है, जो अनादि, अनंत, अखंड, अछेद्य और अभेद हैं, शुकदेवजी जिनका स्मरण करके समाधिस्थ हो जाते हैं, व्यासजी जिनकी व्याख्या करते अघाते नहीं हैं, नारदजी जिनके नाम रस में मग्न रहते हैं, वे ही ग्वालिनों के प्रेम से छछियनभरी छाछ के लिए नाचने को तैयार हो जाते हैं !

कैसा है उस प्रेमास्पद श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति का प्रभाव कि एक मुसलमान सैयद, कहाँ तो शरीर के सुख-भोग में फँसा था और पढ़ी प्यारे श्रीकृष्ण की लीलाएँ तो उनके प्रेमरस में दीवाना हो इब्राहीम से रसखान हो गया !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गणपतिजी का विग्रहः मुखिया का आदर्श

गणेष चतुर्थी.... एक पावन पर्व... विघ्नहर्ता प्रभु गणेश के पूजन-आराधन का पर्व....

गणों का जो स्वामी है - उसे गणपति कहते हैं।

कथा आती है कि माँ पार्वती ने अपने योगबल से एक बालक प्रकट किया और उसे आज्ञा दी कि 'मेरी आज्ञा के बिना कोई भी भीतर प्रवेश न करे।'

इतने में शिवजी आये, तब उस बालक ने प्रवेश के लिए मना किया। शिवजी और वह बालक दोनों भिड़ पड़े और शिवजी ने त्रिशूल से बालक का शिरोच्छेद कर दिया। बाद में माँ पार्वती से सारी हकीकत जानकर उन्होंने गणों से कहाः "जाओ, जिसका भी मस्तक मिले, ले आओ।"

गण ले आये हाथी का मस्तक और शिवजी ने उसे बालक के सिर पर स्थापित कर दिया और उसे जीवित कर दिया - वही बालक भगवान गणपति कहलाये।

यहाँ पर एक शंका हो सकती है कि बालक के धड़ पर हाथी का मस्तक कैसे स्थित हुआ होगा ?

इसका समाधान यह है कि देवताओं की आकृति भले मानुषी हो परंतु उनकी काया मानुषी काया से विशाल होती है।

अभी रूस के कुछ वैज्ञानिकों ने प्रयोग किया कि एक कुत्ते के सिर को काट कर दो कुत्तों के सिर लगा दिये गये। वह कुत्ता दोनों मुखों से खाता है और जीवित है। जब आज का विज्ञान शल्यक्रिया द्वारा कुत्ते को एक सिर की जगह दो सिर लगाने में सफल हो सकता है तो इससे भी लाखों-करोड़ों वर्ष पहले शिवजी के संकल्प द्वारा बालक के धड़ पर गज का मस्तक स्थित हो जाये - इसमें शंका नहीं करनी चाहिए। शिवजी के संकल्प, योग व सामर्थ्य समाज को आश्चर्य,

कुतूहल और जिज्ञासा जगाकर सद्प्रेरणा देना चाहते हैं। इस समय भी कुछ ऐसे महापुरूष हैं जो कि चाँदी की अंगूठी या लोहे के कड़े को हाथ में लेकर अपने यौगिक सामर्थ्य से स्वर्णमयी बना देते हैं। स्वामी विशुद्धानंद परमहंस जैसे महापुरूष के इससे भी अदभुत यौगिक प्रयोग पंडित गोपीनाथ कविराज ने देखे।

छोटी-मोटी गति के लोग भी गणपति जी के लिए कुछ भी कह दें और अपना स्वार्थ सिद्ध करने से लिए अश्रद्धा पैदा कर दें परंतु सच्चे, समझदार, अष्टसिद्धि व नवनिधि के स्वामी, इन्द्रियजित, व्यासजी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उनके द्वारा रचित 18000 श्लोकों वाले श्रीमद् भागवत का लेखन करने वाले, लोक-मांगल्य के मूर्त स्वरूप भी गणपति जी के विषय में विष्णु भगवान ने कहा हैः

न पार्वत्याः परा साध्वी न गणेशात्परो वशी.....

'पार्वती से बढ़कर कोई साध्वी नहीं और गणेश से बढ़कर कोई संयमी नहीं।'

(ब्रह्मवैवर्त गण. खं. 44.75)

भगवान तो उपदेश के द्वारा हमारा कल्याण करते हैं जबकि गणपति भगवान तो अपने श्रीविग्रह से भी हमें प्रेरणा देते हैं और हमारा कल्याण करते हैं।

उनकी सूँड लंबी होती है जिसका तात्पर्य है कि समाज में जो बड़ा हो या कुटुंबादि में जो बड़ा हो उसे दूर की गँध आनी चाहिए।

गणेश जी की लंबी सूँड हमें यह भी संदेश देती है कि हमें विषय-विकारों की गँध दूर से ही आ जानी चाहिए ताकि विषय विकार हमारे जीवन को स्पर्श न कर पायें।

हाथी की आँखें छोटी-छोटी होती हैं, किंतु सुई जैसी बारीक चीज भी उठा लेता है, वैसे ही समाज आदि के आगेवान की, मुखिया की दृष्टि सूक्ष्म होनी चाहिए। गणेश जी के छोटे नेत्र हमें सूक्ष्म दृष्टि रखने का संकेत देते हैं, ताकि हमें अच्छे-बुरे तथा पुण्य-पाप में स्पष्ट रूप से अंतर दिखाई पड़े।

हाथी के कान सूपे जैसे होते हैं जो इस बात की ओर इंगित करते हैं कि 'समाज के गणपति अगुआ के कान भी सूपे की तरह होने चाहिए जो बातें तो भले कई सुने किंतु उसमें से सार-सार उसी तरह अपना ले, जिस तरह सूपे से धान-धान बच जाता है और कचरा-कचरा उड़ जाता है। उनके बड़े कर्ण हमें सत्संग तथा सत्शास्त्रों के श्रवण के लिए तत्पर होने की ओर भी संकेत करते हैं।

गणपति के दो दाँत हैं - एक बड़ा और एक छोटा। बड़ा दाँत दृढ़ श्रद्धा का और छोटा दाँत विवेक का प्रतीक है। अगर मनुष्य के पास दृढ़ श्रद्धा हो और विवेक की थोड़ी कमी हो, तब भी श्रद्धा के बल से वह तर जाता है।

गणपति के हाथ में मोदक और दंड है अर्थात् जो साधन-भजन करके उन्नत होते हैं, उन्हें वे मधुर प्रसाद देते हैं और जो चक्रदृष्टि रखते हैं, उन्हें वक्रदृष्टि दिखाकर दंड से उनका अनुशासन करके उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं।

गणेश जी के हाथ में शोभायमान मोदक (लड्डू) हमें यह भी शिक्षा देता है कि हमारे व्यवहार में, हमारे जीवन में सत्कर्म, सत्संग तथा साधना रूपी मिठास होनी चाहिए।

गणपति जी का पेट बड़ा है - वे लम्बोदर है। उनका बड़ा पेट यह प्रेरणा देता है कि 'जो कुटुंब का समाज का बड़ा है उसका पेट बड़ा होना चाहिए ताकि इस-उसकी बात सुन ले किंतु जहाँ-तहाँ उसे कहे नहीं। अपने पेट में ही उसे समा ले।

गणेशजी के पैर छोटे हैं जो इस बात की ओर संकेत करते हैं कि 'धीरा सो गंभीरा, उतावला सो बावला। कोई भी कार्य उतावलेपन से नहीं, बल्कि सोच-विचारकर करें, ताकि विफल न हों।

गणपति जी का वाहन है - चूहा। इतने बड़े गणपति जी और वाहन चूहा ! हाँ, माता पार्वती का सिंह जिस किसी से हार नहीं सकता, शिवजी का बैल नंदी भी जिस-किसी के घर नहीं जा सकता, परंतु चूहा तो हर जगह घुस कर भेद ला सकता है। इस तरह क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी चूहे तक को भगवान गणपति ने सेवा सौंपी है। छोटे-से-छोटे व्यक्ति से भी बड़े-बड़े काम हो सकते हैं क्योंकि छोटा व्यक्ति कहीं भी जाकर वहाँ की गंध ले आ सकता है।

उनका वाहन मूषक हमें यह भी बताता है कि जिस प्रकार मूषक की सर्वत्र गति होती है, उसी प्रकार भगवत्प्रेमीयों को भी समाज में फैलकर समाज को सन्मार्ग की ओर अग्रसर करना चाहिए।

इस प्रकार गणपति का श्रीविग्रह समाज के, कुटुंब के गणपति अर्थात् मुखिया के लिए प्रेरणा देता है कि जो भी कुटुंब का, समाज का अगुआ है, नेता है उसे गणपति जी की तरह लंबोदर बनना चाहिए, उसकी दृष्टि सूक्ष्म होनी चाहिए, कान विशाल होने चाहिए और गणपति की नाई वह अपनी इन्द्रियों पर (गणों पर) अनुशासन कर सके।'

गणेश जी का श्रीविग्रह मंगलकारी है। उनके श्रीविग्रह से मिलने वाले संदेशों को हम अपने जीवन में उतार लें तो हमारे द्वारा होने वाला प्रत्येक कार्य मंगलकारी होगा।

कोई भी शुभ कर्म हो - चाहे विवाह हो या गृह-प्रवेश, चाहे विद्यारंभ हो चाहे भूमिपूजन, चाहे शिव की पूजा हो चाहे नारायण की पूजा - किंतु सबसे पहले गणेशजी का पूजन जरूरी है।

गणेश चतुर्थी के दिन भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से भगवान गणपति का व्रत-उपवास करवाया था ताकि युद्ध में सफलता मिल सके।

गणेश चतुर्थी के दिन भगवान गणपति का पूजन तो विशेष फलदायी है, किंतु उस दिन चाँद का दर्शन कलंक लगाने वाला होता है, क्यों ?

पुराणों में कथा आती है किः

एक बार गणपति जी कहीं जा रहे थे तो उनके लम्बोदर को देखकर चाँद के अधिष्ठाता चंद्रदेव हँस पड़े। उन्हें हँसते देखकर गणेशजी ने श्राप दे दिया कि 'दिखते तो सुंदर हो, किंतु मुझ पर कलंक लगाते हो। अतः आज के दिन जो तुम्हारा दर्शन करेगा उसे कलंक लग जायेगा।'

यह सच्चाई आज भी प्रत्यक्ष दिखती है। विश्वास न हो तो गणेश चतुर्थी के दिन चंद्रमा के दर्शन करके देख लेना। भगवान श्रीकृष्ण पर संदेह हो गया था। सर्वेश्वर, लोकेश्वर श्रीकृष्ण पर भी जब चौथ के चाँद-दर्शन करने पर कलंक लग सकता है तो साधारण मानव की तो बात ही क्या ?

किंतु यदि भूल से भी चतुर्थी का चंद्रमा दिख जाये तो श्रीमद् भागवत में श्रीकृष्ण की स्यमंतकमणि चोरी के कलंकवाली जो कथा आयी है उसका आदरपूर्वक श्रवण अथवा पठन करने से और तृतिया तथा पंचमी का चंद्रमा देखने से उस कलंक का प्रभाव दूर होता है। जहाँ तक हो सके भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का चंद्रमा न दिखे, इसकी सावधानी रखें।

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय, लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय, गौरी सुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।

अर्थात् जो विघ्नों के नाशकर्त्ता हैं, श्रेष्ठ हैं, कल्याणकारी हैं, देवताओं के प्रिय हैं। जिनका उदर बड़ा है (जो समस्त विश्व को अपने उदर में स्थापित किये हुए हैं), जो गजमुखधारी हैं, श्रुतिरूपी यज्ञों से जो अलंकृत है। ऐसे गौरी (पार्वती) पुत्र, गणों के नाथ (स्वामी) गणेशजी को नमस्कार है।

गणेश चतुर्थी हिन्दू समाज में बड़े उत्साह के साथ मनाया जाने वाला पर्व है। गणेशजी को समस्त देवताओं में श्रेष्ठ माना जाता है। आज के दिन गणेश जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है तथा उनके श्रीविग्रह का पूजन किया जाता है। गणेश जी के श्रीविग्रह के यथार्थ पूजन का मतलब उनके श्रीविग्रह से मिलने वाले महान संदेशों का पालन करना है। उनका श्रीविग्रह हमें शास्त्रसम्मत जीवन जीने की कला सिखाता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सदगुरू की प्राप्ति कराते हैं भगवान गजानन

हमारे शास्त्रों में कई देवताओं का वर्णन आता है। इनमें भी भगवान विष्णु, शिव, सूर्य, जगदम्बा माता और गणेशजी ये पाँच देव प्रमुख कहे गये हैं।

भगवान विष्णु विराट पुरूष हैं जिनसे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। भगवान शिव उस विराट पुरूष की आत्मा हैं, आद्यशक्ति माँ जगदम्बा आत्मा की कार्यशक्ति अथवा प्रकृति है जिसकी अव्यक्त आत्मसत्ता विराट ब्रह्माण्ड के रूप में स्वयं को व्यक्त करती है। भगवान सूर्य नारायण उस

विराट पुरूष के नेत्र हैं जिनसे समस्त संसार प्रकाशमान होता है तथा भगवान गणपति विराट पुरूष की बुद्धि है। इसीलिए गणेशजी को बुद्धि का अधिष्ठाता देव भी कहा गया है। यह भी कह सकते हैं कि अनंत ईश्वर की बौद्धिक सत्ता गणेश जी के रूप में प्रकट हुई है।

सनातन धर्म में भगवान गणपति का बड़ा ऊँचा स्थान है। प्रत्येक शुभ कार्य में उनका पूजन सर्वप्रथम किया जाता है। उनके पूजन से विघ्नों का भय नहीं रहता क्योंकि वे विघ्नविनाशक हैं। अतः शुभ कार्य की निर्विघ्न सफलता के लिए उनका पूजन होता है।

गणेशजी के प्रथम पूजन में भी बड़ा सूक्ष्म रहस्य है। पुराणों में आता है कि देवताओं में विवाद हुआ कि सर्वप्रथम किस की पूजा होनी चाहिए। अंत में यह निश्चित हुआ कि जो सभी लोकों की तीन बार परिक्रमा सबसे पहले कर लेगा वह प्रथम पूजा का अधिकारी होगा। सभी देवता अपने-अपने वाहनों पर परिक्रमा के लिए चल पड़े। गणेशजी अपने पिता भगवान शिव व माता पार्वती के समीप गये। भगवान शिव-पार्वती एक शिला पर बैठे थे। गणेशजी ने अपने माता-पिता की तीन बार परिक्रमा लगायी और निश्चिंत होकर अन्य देवताओं के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। समय पाकर सभी देवता वापस आये परंतु गणेशजी की विजय पर सभी ने प्रश्न उठाया क्योंकि उन्होंने तो एक भी लोक की परिक्रमा नहीं की। इस पर गणपति जीन अपना भावार्थ रखते हुए सभी को समझाया कि उनके पिता शिवजी विराट पुरूष की आत्मा रूप है तथा माता आद्य शक्तिरूपा हैं। अतः जब मूल की परिक्रमा हो गयी तब अन्यत्र भटकने का श्रम क्यों किया जाये ?

सभी गणेश जी की बुद्धिमत्ता पर नतमस्तक हुए और उन्हें प्रथम पूज्य घोषित किया गया। इस कहानी के पीछे बड़ा गूढ़ रहस्य है। सभी देवताओं ने भौतिक बल से विजय प्राप्त करनी चाही परंतु गणेशजी ने बुद्धि तथा विवेक का उपयोग किया। देवता सृष्टि की ओर भागे परंतु गणेशजी सृष्टि के अधिष्ठान की ओर गये। अर्थात् वह बुद्धि जो विवेक का उपयोग करके संसार की ओर से उपराम होकर जगत के अधिष्ठान ईश्वर और ईश्वर से मिलाने वाली उसकी आह्लादिनी शक्ति की शरण में आती है वह परम सात्त्विक बुद्धि समाज में पूजनीय बन जाती है।

स्कंदपुराण के ब्राह्मखंड में भगवान शिवजी पार्वती जी से कहते हैं-

जपन्ति शाक्ताः सौराश्च गाणपत्याश्च वैष्णवाः।
शैवाः पाशुपताः सर्वे सत्यं सत्यं न संशयः।।

शक्ति के, सूर्य के, गणपति के, विष्णु के, शिव (पशुपति) के और के भक्त (सदगुरू की शरण में आकर) इस गुरूगीता का पाठ करते हैं, यह सत्य है, इनमें कोई संदेह नहीं।

अर्थात् इन पाँच देवों में से किसी भी देव की उपासना देर-सवेर आत्मदेव का अनुभव कराने वाले सदगुरू की प्राप्ति कराती है। अन्य देवता भक्त को मनोवांछित फल दे देते हैं परंतु उपरोक्त पाँच देव भक्त को वही देते हैं जिसमें उसका कल्याण हो। मानव का परम कल्याण और अंतिम लक्ष्य है आत्मप्राप्ति और वह ब्रह्मवेत्ता सदगुरू के मंत्र, उपदेश तथा सान्निध्य से ही संभव

है। अतः ये पाँच देवता अपने भक्त को किसी ब्रह्मज्ञानी की शरण में पहुँचाकर उसके परम कल्याण का द्वार खोल देते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

गणेश चतुर्थी का वैज्ञानिक रहस्य

गणों के अध्यक्ष, विघ्नेश्वर, विघ्न-विनायक आदि शतशः नामों से संसार में विख्यात भगवान गणपति के नाम और प्रभाव से संसार का कौन व्यक्ति अपरिचित है ? गणेश चतुर्थी इन्हीं विश्व-विश्रुत भगवान गणेश की आराधना का दिन है।

चतुर्थी को ही गणेश व्रत क्यों ?

ज्योतिष शास्त्र में जैसे, रवि आदि वारों का सूर्य आदि ग्रहों के पिंडों के साथ विशेष संबंध स्थिर किया गया है और इसी आशय से उक्त वारों के नाम ही वैसे रख दिये गये हैं। इसी प्रकार प्रतिपदा आदि पन्द्रहों तिथियों का भी भगवान की अंगभूत किसी-न-किसी दैवी शक्ति के साथ विशेष संबंध है। यह तथ्य तिथियों के अधिष्ठाता के रूप में प्रकट किया गया है। जैसे,

तिथिशा वह्निको गौर गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
वसुदुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी।।

अर्थात् प्रतिपदा आदि तिथियों के अधिष्ठाता क्रमशः ये हैं- 1 अग्नि 2 ब्रह्मा 3 गौरी 4 चतुर्थी 5 सर्प 6 कार्तिकेय 7 सूर्य 8 वसु 9 दुर्गा 10 काल 11 विश्वेदेवा 12 विष्णु 13 कामदेव 14 शिव और 15 चन्द्रमा (तथा अमावस्या के पितर)।

उपर्युक्त प्रमाण से यह सिद्ध है कि चतुर्थी तिथि का अधिष्ठाता भगवान सर्वविघ्न हरण करने वाला 'गणेश' नामक सगुण विग्रह है। इसका सीधा तात्पर्य यह है कि चतुर्थी तिथि को चन्द्र और सूर्य का अंतर उस कक्षा पर अवस्थित होता है, जिस दिन कि मानव स्वभावतः कुछ ऐसे कृत्य कर सकता है जो कि आगे चलकर उसके जीवनोद्देश्य में बाधकरूपेण आगे आवें। ऐसी स्थिति में इस संभावित उपप्लव की रोकथाम के लिए चतुर्थी के दिन व्रत, पूजन आदि धर्मकृत्यों के द्वारा दिन अन्तःकरण संयत रहे और वैसा अवसर न आये।

चतुर्थी को चन्द्रदर्शन निषिद्ध क्यों ?

प्रायः सभी शुक्ल चतुर्थियों को और खासकर भाद्रपद महीने की शुक्ल चतुर्थी को चन्द्रदर्शन निषिद्ध माना जाता है। शास्त्रों में और लोक में भी यह प्रबल प्रवाद प्रचलित है कि इस दिन चन्द्रदर्शन करने वाले व्यक्ति को मिथ्या कलंक लगता है। इस प्रकार इतिहास-ग्रन्थों में भी प्रसिद्ध है कि चतुर्थी के चन्द्रदर्शन से श्रीकृष्ण भगवान पर सत्राजित द्वारा स्यमंतकमणि को चुराने का मिथ्या कलंक लगा दिया गया था। यह सब क्यों ?

अनुभवसिद्ध लोकोक्ति है कि **'न निर्मूला जनश्रुति'** अर्थात् अनेक व्यक्ति एक स्वर से जो हल्ला मचाते हैं वह सर्वथा और सर्वदा निर्मूल नहीं होता किंतु उसकी तह में कोई न कोई ऐसा हेतु अवश्य होता है कि जिससे भ्रांत होकर सर्वसाधारण को तिल का ताड़ बना देने का अवसर मिलता है। भगवान श्रीकृष्ण की मिथ्या कलंकवाली घटना को ही ले लीजिए। वह ऐसी हैः

द्वारिकावासी सत्राजित को सूर्य से एक लोकोत्तर मणि मिली। जब उसे पहन कर वह द्वारिका में प्रविष्ट हुआ तो उसकी चमक-दमक से सूर्य सा देदीप्यमान दिख पड़ा। भगवान ने भी उस मणि को अन्यान्य द्वारिकावासियों की भाँति बड़ी तन्मयता से देखा और उसकी अद्वितीयता की केवल दाद ही नहीं दी बल्कि विनोद में यहाँ तक कह डाला कि "भाई ! यह मणि तो मुझे बहुत ही पसंद है।" बात समाप्त हुई।

समय पाकर जब सत्राजित का भाई प्रसेन उसे पहन कर ग्रामान्तर गया तो सिंह ने उसे मार डाला। उसके वापस न लौटने पर सत्राजित ने जब अन्वेषण किया तो प्रसेन का कुछ भी पता न चल सका। बस ! सत्राजित ने भगवान के उस दिन के विनोदात्मक वाक्य कोः "भाई ! यह मणि तो मुझे बहुत ही पसन्द है" इस अनर्थ का मूल कारण निश्चित कर लिया। यदि भगवान श्रीकृष्ण उस दिन इस प्रकार का व्यंग्यात्मक विनोद न करते तो शायद सत्राजित को संदेहोत्पादन का अवसर न मिलता। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य की कोई छोटी सी भूल भी मिथ्या कलंक कल्पित करने का आधार बन जाती है।

मनुष्य ऐसी भूल क्यों कर बैठता है ? इसका एकमात्र कारण काल है। दार्शनिक दृष्टि से कोई कार्य अकारण उत्पन्न नहीं होता। जब अन्य कोई प्रत्यक्ष कारण न दिख पड़े तो लोक में आज भी यही कहा जाता है कि भाई ! वक्त की बात है, न चाहते हुए भी ऐसा हो गया। सो यह काल कब कैसा होता है, इस तथ्य का भी पता हमारे पूर्वजों ने लगाया और उसकी आधारभूमिका में ग्रहपिण्डों की गति विगति से होने वाले वातावरण को हेतु पाया।

इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को हिन्दू ग्रन्थों में योग और करण का नाम दिया गया है। यदि आप पंचांग खोलकर देखेंगे तो उसमें प्रतिदिन की तिथि, वार और नक्षत्र इन तीनों के उल्लेख के बाद योग और करण नामक दो अन्य तत्त्वों का भी उल्लेख मिलेगा। वस्तुतः उक्त पाँच तत्त्वों का निरूपक होने के कारण ही तिथिपत्र का अन्वितार्थ नाम पंचाग पड़ा।

चतुर्थी को चन्द्रदर्शन के निषेध का वैज्ञानिक कारण यह है कि ज्योतिष गणना के अनुसार सूर्य और चन्द्र पिण्ड इस दिन ऐसी त्रिभुज कक्षा में अवस्थित रहते हैं कि जिससे प्राणशक्ति की विषम अवस्था रहती है। हिन्दू ज्योतिष गणना तो सूर्य भ्रमण पर आधारित है ही, परन्तु पाश्चात्य ज्योतिर्विद भी अब सूर्य का अपने ही अक्ष पर अथवा अनिश्चित दिशा में अनवरत भ्रमण मानने लगे हैं, और यह तथ्य भी स्वीकार करते हैं कि सूर्यपिण्ड चारों ओर से केवल प्राणशक्ति वर्षानेवाला ही नहीं है अपितु जहाँ-तहाँ उसमें मारक किरणों की भी सत्ता है।

हमारी पृथ्वी की ओर सूर्य का एक पार्श्व ही सदैव नहीं रहता, भ्रमण के कारण वह प्रतिक्षण बदलता रहता है। यही दशा चन्द्रपिण्ड की है। सो, ऋषियों ने समाधि में देखा कि चन्द्रमा की चौथी कला का विकास प्रायः सब चतुर्थियों को और खासकर भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्थी को सूर्य की मारक किरणवाले भाग से प्रकाशित होता है जिससे पार्थिव जगत में चन्द्र से अनुप्राणित मनवाले सभी प्राणी केन्द्रसत्ता के अनुरूप ही प्रभावित होते हैं। अतः इस दिन सूर्य की मारक किरण से प्रकाशित होने वाले चन्द्रमा की चौथी कला को न देखना चाहिए। क्योंकि इसके देखने से चन्द्र सम्भूत मन भी विकृत विचार तरंगों से तरंगित हो जायेगा और चन्द्रदर्शन करने वाला मनस्वी उक्त विकृत तरंग से प्रभावित हुआ ऐसा कार्य कर बैठेगा जो कि दूसरों के लिए अन्यथा अर्थ लगाकर भ्रमोत्पादन कर सकने का आधार बन जायेगा। वे उस आधार पर तिल का ताड़ बना कर उस व्यक्ति को मिथ्या लांछित कर सकने का अवसर पायेंगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जन्माष्टमी संदेश

प्रेम में अपनत्व होता है, निःस्वार्थता होती है, विश्वास होता है, विनम्रता होती है और त्याग होता है। सच पूछो तो प्रेम ही परमात्मा है और ऐसे परम प्रेमस्वरूप, परम प्रेमास्पद श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव ही जन्माष्टमी है।

श्रीकृष्ण जेल में जन्मे हैं। वे आनंदकंद सच्चिदानंद जेल में प्रकटे हैं। आनंद जेल में प्रकट तो हो सकता है परंतु आनंद का विस्तार जेल नहीं हो सकता। जब तक यशोदा के घर नहीं जाता तो आनंद प्रेममय नहीं हो पाता। योगी समाधि कहते हैं - एकांत में, जेल जैसी जगह में। आनंद प्रकट तो होता है किंतु समाधि टूटी तो आनंद गया। आनंद प्रेम से बढ़ता है, माधुर्य से विकसित होता है। श्रीकृष्ण के जीवन में सामर्थ्य है, माधुर्य है, प्रेम है। जितना सामर्थ्य उतना ही अधिक माधुर्य, उतना ही अधिक शुद्ध प्रेम है श्रीकृष्ण के पास।

पैसों से प्रेम करोगे तो लोभी बनायेगा, पद से प्रेम करोगे तो अहंकारी बनायेगा, परिवार से प्रेम करोगे तो मोही बनायेगा। परंतु प्राणिमात्र के प्रति समभाववाला प्रेम रहेगा, शुद्ध प्रेम रहेगा तो वह नित्य नवीन रस देगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम